आचार्यश्रीजिनप्रभसूरिविरचितः

सर्वसिद्धान्तस्तवः

(सावचूरिः)

आचार्यश्रीजिनप्रभसूरिविरचितः

सर्वसिद्धान्तस्तवः

(अवचूरिसहितः)

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र

ग्रन्थनाम	:	**सर्वसिद्धान्तस्तवः (मूल तथा अवचूरि)**
कर्ता	:	**आ. श्रीजिनप्रभसूरि**
अवचूरि	:	**पं. सोमोदयगणी**
विषय	:	**४५ आगमों की स्तुति**
सम्पादक	:	**मुनिश्रीवैराग्यरतिविजयजी**
सहायक	:	**श्री अमितकुमार ध. उपाध्ये**
आवृत्ति	:	**प्रथम**
प्रकाशक	:	**श्रुतभवन संशोधन केन्द्र - शुभाभिलाषा रीलीजीयस ट्रस्ट**

~: प्राप्तिस्थान :~

पूना	:	**श्रुतभवन संशोधन केन्द्र** ४७-४८, अचल फार्म, आगममंदिर से आगे, सच्चाइ माता मंदिर के पास, कात्रज, पुणे-४११०४६ Mo. 7744005728 (9-00am to 5-00pm) www.shrutbhavan.org, Email : shrutbhavan@gmail.com
अहमदाबाद	:	**श्रुतभवन (अहमदाबाद शाखा)** C/o उमंग शाह बी-४२४, तीर्थराज कॉम्पलेक्स, वी. एस. हॉस्पिटल के सामने, मादलपुर, अहमदाबाद-६. मो. - 09825128486
अक्षरांकन	:	**अखिलेश मिश्र, विरति ग्राफिक्स**, अहमदाबाद फोन : मो. ०८५३०५२०६२९, ०९८७९३८८४९०

प्रकाशकीय

परमात्मा श्री महावीर देवने जगत को दो अनमोल भेट दी - अहिंसा और अनेकान्त । अहिंसा और अनेकान्त के सहारे आत्मध्यान की साधना भगवान के उपदेश का केन्द्रबिन्दु है । भगवान का यह उपदेश आगम और शास्त्रो के माध्यम से प्रवाहित हुआ । आगम और शास्त्र जैन धर्म की सिर्फ धरोहर ही नहीं अनमोल विरासत भी है। परमात्मा के निर्वाण के एक हजार साल बाद आगम और शास्त्र लिखे गये । शुरु में ताडपत्र के उपर बाद में कागज के उपर शास्त्र लिखे जाते थे । आज हमारे पास १५००० शास्त्रो की दस लाख हाथ से लिखि हुइ प्रतियाँ है । मुद्रण युग शुरु होने पर आगम और शास्त्र छपने लगे ।

लेखन और मुद्रण के दौरान आगम और शास्त्रो में मानव सहज स्वभाववश गलतियों का प्रवेश हो गया । आज बहुतांश शास्त्र मुद्रित रूप में उपलब्ध है । जिनका संशोधन अभी भी बाकी है । जो सिर्फ प्राचीन ताडपत्र के उपर लिखि गई हस्तप्रतो के आधार पर हो सकता है । श्रुतभवन इस के मुख्य आधार पर संशोधन कार्य करने का लक्ष्य रखता है । संशोधन कार्य के लिये हमारी संचालन समितिने विशेषज्ञ पण्डितो को नियुक्त किया है जो ट्रेनींग पाकर पू. मुनिश्री **वैराग्यरति वि.**म. एवं पू. मुनिश्री **प्रशमरतिवि.**म. के दिशादर्शन अनुसार इस कार्य में संलग्न है । इस कार्य में अनेक समुदाय के विशेषज्ञ आचार्यभगवंतो का मार्गदर्शन और सहाय प्राप्त हो रहे हैं । कार्य की विशालता, महत्ता और उपयोगिता को देखते हुए आगामी समय में पण्डितों की संख्या बढाने का इरादा है ।

इसी के साथ दूसरा आयोजन है आज तक जो शास्त्र मुद्रित रूप में उपलब्ध नहीं है उनका संशोधन करके प्रकाशन करना । इन शास्त्र को दो श्रेणि में बाँटा जा सकता है १ साधु उपयोगी, २ गृहस्थ उपयोगी । गृहस्थ उपयोगी शास्त्र का सरल सारांश करके अंग्रेजी, हिन्दी और गुजराती भाषा में प्रस्तुत किया जायेगा।

प्रस्तुत कृति सर्वसिद्धांतस्तवः, ४५ आगमो की स्तुति रूप है ।

श्रुतभवन संशोधन केन्द्र का प्रथम प्रकाशन आगमस्तुति स्वरूप मंगल से हो रहा है यह बड़े आनन्द का विषय है । श्रुतभवन संशोधन केन्द्र की समस्त गतिविधियों के मुख्य आधार स्तंभ मांगरोळ (गुजरात) निवासी श्री चंद्रकलाबेन सुंदरलाल शेठ परिवार एवं भाईश्री (ईन्टरनेशनल जैन फाऊन्डेशन, मुंबई) के हम सदैव ऋणी है ।

दिनांक ३०-७-११

भरतभाई शाह
मानद अध्यक्ष

Editor's Note

The Stavana (स्तवन), Stotra (स्तोत्र) grantha leads to the spiritual aspect for every religion. Like that there are a lots of Stavana, Stotra granthas written in Jain religion & every work has its own aspect or subject matter. From that here in one of the stava (स्तव) leading towards the subject matter of 45 Agamas putting in front of you.

The main author of this (सर्वसिद्धान्तस्तवः) work is Aa. Shri ***Jinaprabhasuri*** (जिनप्रभसूरि), who was the scholar & the founder of ***Laghukharatara*** (लघुखरतर) (one kind of Monks branch). There are plenty of Stotras written by Shri ***Jinaprabhasuri.***

Aa. Shri ***Jinaprabhasuri*** met Aa. ***Somatilakasuri*** (सोमतिलकसूरि) near the ***Deesa*** (डीसा) at the town named ***Jagharala*** (जघराल). Later Aa. Shri Jinaprabhasuri gives the 700 Stotras to ***Somatilakasuri,*** by knowing the risen of ***Tapagachh*** (तपागच्छ) (one kind of Monks branch) from ***Padmavati Devi.*** Aa. Shri ***Somatilakasuri*** is desciple of ***Somaprabhasuri*** (सोमप्रभसूरि) (the author of ***Karpurastav***).

With the General Editor Munishree ***Vairagyarati vijayajim.s.*** I have taken this for the critical edition of this work. As far as the editing of this work (सर्वसिद्धान्तस्तवः) is concerned, there are four manuscripts which I have deciphered. Into that two manuscripts (A & B प्रत) are from ***Bhadarakar Oriental Research Institute, Pune*** and other two (C & D प्रत) are from ***Hemachandracharya Gyanbhandar, Patan.***

The work consists the Stavana of Jinagam (जिनागम), the brief introduction of 45 Agamas. And this contains 46 Shlokas & Avacuri as well.

25 Jan. 2011 **– Amitkumar D. Upadhye**

श्रुतप्रेमी

परम पूज्य तपागच्छाधिराज दीक्षायुगप्रवर्तक आचार्यदेवश्रीमद्
विजयरामचन्द्रसूरीश्वरजी महाराजाना आज्ञावर्तिनी
प्रवर्तिनी पूज्य साध्वीजीश्री दर्शनश्रीजीम.ना
शिष्या मधुरभाषी स्व. पू. साध्वीजीश्री हर्षपूर्णाश्रीजीम.सा. ना
शिष्या सरलस्वभावी
पूज्य साध्वीजीश्री चन्द्ररत्नाश्रीजीम. तथा
पूज्य साध्वीजीश्री मोक्षरत्नाश्रीजीम.सा.नी
पावन प्रेरणाथी रत्नशिला एपार्टमेंट वापीमां
थयेल अंतिम चातुर्मास (वि.सं. २०६८)मां
आराधक श्राविका बहेनो द्वारा प्राप्त उत्पन्न
थयेल ज्ञानद्रव्यमांथी
आ ग्रन्थ प्रकाशननो लाभ लेवामां आव्यो छे.
आपनी श्रुतभक्तिनी अनुमोदना

पुरोवचनः

सर्वसिद्धान्तस्तव श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित पैतालीस आगमों की स्तुति है। इस स्तव में आगमों के नाम एवं उनका सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है।

आ. श्रीजिनप्रभसूरिजी :

'**सर्वसिद्धान्तस्तवः**' मूलतः आ. श्रीजिनप्रभसूरिजी की कृति है। आ. श्रीजिनप्रभसूरिजी खरतरगच्छ के महान प्रभावक एवं विद्वान आचार्य थे। वह आ. श्रीजिनसिंहसूरि के प्रधानशिष्य थे। वि.सं. १३३१ में उन्होंने लघुखरतर शाखा का स्थापन किया था। उनकी कुल सत्रह कृतियाँ उपलब्ध है–

१. परमसुखद्वात्रिंशिका
२. प्रव्रज्याविधानवृत्तिः
३. प्रत्याख्यानस्थानविवरणम्
४. साधुप्रतिक्रमणवृत्तिः (सं. १३६५)
५. सन्देहविषौषधिवृत्ति (सं. १३६४)
६. श्रेणिकचरितम् (द्व्याश्रयं) (सं. १३५६)
७. विषमकाव्यवृत्तिः
८. तपोमतकुट्टनकम्
९. धर्माधर्मकुलकम्
१०. पूजाविधिः
११. विधिप्रपा (सं. १३६३)
१२. सप्तस्मरणटीका
१३. वन्दनस्थानविवरणम्
१४. विविधतीर्थकल्पः (सं. १३२७)
१५. दीपालिकाकल्पः
१६. सूरिमन्त्रप्रदेशविवरणम्
१७. अजितशान्ति–भयहर–उपसर्गहरस्तोत्रवृत्तिः (सं. १३६५)

उन्होंने बहुत सारे स्तोत्र की रचना की है। सर्वसिद्धान्तस्तव की अवचूरि के अनुसार आचार्यश्री को रोज नये स्तव का निर्माण करने के बाद

ही आहार ग्रहण करने का नियम था। वे मान्त्रिक भी थे, डीसा के पास जघराल गाँव में उनका आचार्य श्रीसोमतिलकसूरिजी के साथ मिलन हुआ था। वहाँ एक चूहे ने आ. श्रीसोमतिलकसूरिजी की झोली (आहार पात्र को ग्रहण करने वस्त्र से बनी हुई) काट दी। आ. श्रीजिनप्रभसूरि ने मन्त्र के प्रभाव से सभी चूहों को बुलाया। जिस चूहे ने झोली काटी थी उसे उपदेश देकर विदा किया। उनको पद्मावती देवी प्रत्यक्ष थी। पद्मावती देवी के वचन से- 'आगे जाकर तपागच्छ का उदय होनेवाला है,' यह जानकर उन्होंने अपने बनाए हुए ७०० स्तोत्र श्रीसोमतिलकसूरिजी को अर्पण किये थे।

आ. श्रीसोमतिलकसूरिजी :

आ. श्रीसोमतिलकसूरिजी, आ. श्रीसोमप्रभसूरिजी के पट्टधर थे (कर्पूरस्तव के कर्ता)। उनका जन्म वि.सं. १३५५ माघ मास में, दीक्षा सं. १३६९, सं. १३७२ में सूरिपद (मतलब १४ साल की उम्र में दीक्षा और १८ साल की उम्र में सूरिपद) वि.सं. १४२४ में स्वर्गवास हुआ। उनकी कृतियाँ—

१. बृहन्नव्यक्षेत्रसमासः
२. सप्ततिशतस्थानप्रकरणम्
३. 'यत्राखिल' सञ्ज्ञाक चतुर्विंशतिजिनस्तुतिवृत्तिः
४. 'जयवृषभ' चतुर्विंशति-जिनस्तवनवृत्तिः
५. 'स्त्रस्ताशर्म' स्तुतिः
६. 'श्रीतीर्थराज' स्तुति एतद्वृत्तिश्च
७. शुभभावानत० (चतुरर्थभाक्)
८. 'श्रीमद्वीरं स्तुवे०' (कमलबन्धस्तवनम्)
९. शिवशिरसि०
१०. 'श्रीनाभिसम्भव०' 'श्रीशैवेय०'
११. 'श्रीसिद्धार्थ०'- वीरस्तवनम् (श्लो. १२)
१२. चतुर्विंशतिजिनस्तवनम्.

अवचूरिः

आ. श्रीविशालराजसूरि के शिष्य पं. श्रीसोमोदयगणि ने इस स्तव के उपर अवचूर्णि की रचना की है। यह स्तोत्र के अर्थ को समझने के लिए सहायक है। अवचूर्णिकार ने स्वयं लिखा है कि मैंने यह विवृति पदच्छेद

रूप बनायी है । अवचूरिकार के वचन से ही यह ज्ञात होता है कि आ. श्रीजिनप्रभसूरि ने ७०० स्तोत्र श्रीसोमतलिकसूरि म. को भेट किये थे ।

साधारणतः आगमो का क्रम ११ अंग, १२ उपांग, १० प्रकीर्णक, ६ छेदसूत्र, ४ मूलसूत्र, नन्दी, अनुयोगद्वार गिना जाता है । यहाँ पर इस क्रम से स्तुति की गयी है – ४ मूलसूत्र, नन्दी अनुयोगद्वार, ऋषिभाषित, ११ अंग, १२ उपांग, १० प्रकीर्णक, छेदसूत्र, दृष्टिवाद, अंगविद्या । ऋषिभाषित और अंगविद्या—जो कि प्रकीर्णक सूत्र में गिने जाते है—यहाँ पर उनको स्वतन्त्र स्थान प्राप्त है । चूर्णिकारने विशेषतः सूत्रो की चमत्कारिता का उल्लेख किया है । जैसे कि आचारांग के महापरिज्ञा अध्ययन में आकाशगामिनी विद्या थी । जिसका सहारा लेकर श्रीवज्रस्वामी ने बौद्धों को जिता था । अंगविद्या में ऐसे पन्द्रह आदेश है जो स्वप्न में भविष्य का कथन करते है । आगम के अलावा कुछ एक महत्त्वपूर्ण सूत्र का भी स्तवन इसमें है ।

अवचूरिकार ने इसके अलावा पाक्षिकसूत्र की भी अवचूरि लिखी है। जिसका अतिदेश श्लोक ३३ में है ।

आदिगुप्त नाम के गुरु शायद उनके विद्यागुरु रहे होंगे । अन्तिम प्रशस्ति पद्य में उनकी कृपा से यह वृत्ति की रचना हुई यह बताया है ।

मूलकार ने इस स्तव में अनुष्टुप, आर्या उपजाति आदि छन्द का प्रयोग किया है ।

सर्वसिद्धांतस्तव श्वेताम्बर परम्परा सम्मत ४५ आगमों की महिमा बताती है । परमात्माकी और गुरुकी स्तुति करने वाले स्तोत्र पर्याप्त संख्या में उपलब्ध है । सिद्धान्त की स्तुति करने वाले स्तोत्र में यह स्तोत्र अपनी सरलता एवं प्रासादिकता के कारण विशिष्ट स्थान प्राप्त है ।

आ. श्रीजिनप्रभसूरि का छन्द विषयक बोध अप्रतिम था । आपने अजितशान्तिस्मरण में बहोत अप्रचलित छन्दो का प्रयोग किया है । इनमें से कई छन्द का विवरण आ.श्रीहेमचन्द्रसूरिकृत ‘छन्दोऽनुशासनम्’ में नहीं मीलता । आ.श्रीजिनप्रभसूरि ने प्राचीन कविदर्पण नाम के प्राकृतभाषा बद्ध

छन्दोग्रन्थ का आधार लेकर इन छन्दो का विवरण दिया है। (जै.सा.सं.इ.६०४ टी. ४१९)

प्रस्तुतसंपादन :

यह लघुकृति पहले काव्यमाला के सातवें भाग में मुद्रित थी। वहाँ कुछ पाठ खण्डित है। प्रस्तुत सम्पादन 'गव्हर्मेन्ट मेन्युस्क्रीप्ट लायब्रेरी भाण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पुणे' से प्राप्त दो हस्तप्रत (A & B प्रत) तथा पाटण के 'हेमचन्द्राचार्य ज्ञानभण्डार' से प्राप्त दो हस्तप्रत (C & D प्रत) के आधार पर किया गया है। यह चारों हस्तप्रत पंचपाठी है जिनका भण्डार क्रमांक—

A प्रत – १८८/१८८१–८२ काल – संवत् १५२४

B प्रत – ६४८/१८९५–९८

C प्रत – पाकाहेम – १२३८१ काल – संवत् – १५१८

D प्रत – पाकाहेम – १२३८३ (अपूर्ण)

अवचूरि में निर्दिष्ट व्याख्या (पदविवरण) का कोश परिशिष्ट–४ में शामिल है। सम्पादन के लिये पाटण की दो पाण्डुलिपियाँ प.पू. परार्थप्रवण विद्वान् संशोधक आचार्यदेव **श्रीमुनिचन्द्रसूरीश्वरजी** म. के द्वारा प्राप्त हुई है और इस कृति का परिमार्जन भी किया है। अतः उनके प्रति सविशेष कृतज्ञता अभिव्यक्त करता हूँ। प.पू. **आ.भ.श्रीशीलचन्द्रसू.**म. ने सम्पादन कर्म में सहाय की है।

श्री अमितकुमार उपाध्ये (एम्.ए.) ने बड़ी लगन और मेहनत से इस लघुकृति का सम्पादन कर्म किया। अतः वह साधुवादार्ह है।

इस संशोधन सम्पादन की क्षतियाँ विद्वज्जन सुधार कर निर्देश करेंगे यही मनोकामना।

२५ जून, २०११ – **मुनि वैराग्यरतिविजय**

आगम मन्दिर कात्रज, पुणे.

● ● ●

सर्वसिद्धान्तस्तव
(सारानुवाद)

मुनि वैराग्यरतिविजय

अवचूर्णि मंगल

कैवल्यलक्ष्मी की प्राप्ति हेतु (श्रीविशेषाय) आवेश रहित मुनि (गतावेशाः) जिन का (यम्) एकाग्रता से (लयेन) ध्यान करते है, जिन का गौरव अति महान है ऐसे श्री वीर प्रभु स्तुति द्वारा जय रूपी लक्ष्मी के प्रदाता हो ।[१]

प्रस्तावना

(१) पहले की बात है । आ. श्रीजिनप्रभसूरिजी को एक कठिन अभिग्रह था । वे रोज संस्कृत में एक नया स्तोत्र बनाकर ही निरवद्य आहार ग्रहण करते थे । उनको पद्मावती देवी प्रत्यक्ष थी । उसके वचनसंकेत से आगामी काल में तपागच्छ का अभ्युदय होने वाला है यह जानकर इन्होंने अपने नाम से अंकित सातसौ स्तोत्र तपागच्छ के आ. श्रीसोमतिलकसू. को भेट किये । आ.श्रीसोमतिलकसू. विद्यानुरागी थे । वे अपने शिष्यो और विद्यार्थीयों को आ. श्रीजिनप्रभसूरिजी के यमक, श्लेष, चित्रकाव्य, विभिन्न छन्द में रचे हुए स्तव पढ़ाते थे । सर्वसिद्धान्तस्तवः उनमें से एक है और बहुत उपयोगी है ।

गुरु को, श्रुतदेवता सरस्वती को तथा पंचम गणधर श्री सुधर्मा स्वामि को नमस्कार करके मैं श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर जिनागमो की स्तुति करता हूँ । जिनागम अविरति, कषाय आदि अनेक प्रकार के पापो को रोकते हैं ।

---

१. अवचूरि के मंगल श्लोक के प्रत्येक पाद का चौथा-पाँचवा अक्षर मिलाने पर अपने गुरु **श्रीविशालराज गुरु** यह नाम व्यक्त होता है ।

ध्यायन्ति **श्रीवि**शेषाय, गता**वेशा ल**येन यम् ।
स्तुतिद्वा**रा ज**यश्रीदः, श्रीवीरो **गुरु**गौरवः ॥

चार मूलसूत्र

(२) पहला आगम आवश्यकसूत्र है । उसके छह अध्ययन है । सामायिक (१) चतुर्विंशतिस्तव (२) वन्दनक (३) प्रतिक्रमण (४) कायोत्सर्ग (५) प्रत्याख्यान (६) । यह आगम मुक्ति स्त्री को देखने के लिये दर्पण समान है । इसके उपर श्री भद्रबाहुसू.म. ने इकत्तीस सौ श्लोक प्रमाण निर्युक्ति रची है । अठारह हजार श्लोक प्रमाण प्राचीन चूर्णि भी है । बाईस हजार श्लोक प्रमाण वृत्ति है । जो इस आगम के अर्थ को स्पष्ट करते है । इसे मैं हृदय में धारण करता हूँ।

(३) श्रीविशेषावश्यक भाष्य, आवश्यकसूत्र का ही विस्तार है। भाष्य का अर्थ यही है - सूत्र के अर्थ का विस्तार। विस्तृत होने से उसका दूसरा नाम महाभाष्य है । स्वाति नक्षत्र में सीप में पानी गिरता है वह मोती बन जाता है। महाभाष्य युक्ति रूप मोती का उत्पादक है, जैसे स्वाति का नीर। सागर में जीतनी मौजे उठती है उतने पदार्थ महाभाष्य में है। उसकी मैं स्तुति करता हूँ ।

(४) श्रीदशवैकालिक सूत्र मेरु पर्वत जैसा है। मेरु पर्वत की चालीस योजन ऊँची चूलिका है, श्रीदशवैकालिक सूत्र की दो चूलिकाएँ है। मेरु पर्वत देवों का प्रिय स्थल है, श्रीदशवैकालिक सूत्र उत्तम मुनियों का प्रिय शास्त्र है । मेरु पर्वत सुवर्णमय है, श्रीदशवैकालिक सूत्र कल्याणमय है । श्री शय्यंभवसूरिजी ने अनध्याय काल में दस अध्ययन रूप सूत्र का प्रणयन किया है । उसकी हम स्तुति करते है ।

(५) ओघनिर्युक्ति, श्री भद्रबाहुसू.म. ने नौवे प्रत्याख्यानप्रवाद पूर्व की तीसरी आचार नामक वस्तु के बीसवे प्राभृत से उद्धृत किया और वर्तमानकालीन साधुओं के हित के लिये आवश्यकनिर्युक्ति में गणधरवाद के आगे उसे स्थिर किया। बाद में सुगमता के लिये उसे स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में स्थापित किया गया है। ओघनिर्युक्ति प्रशस्त है, उसमें शब्द कम अर्थ ज्यादा है, उसमें बताई गई

युक्तियाँ अमोघ है। आगम के अर्थघटन की विधा को अनुयोग कहते है। आगम में प्रवेश उपोद्घात से होता है। उपोद्घात के छब्बीस भेद है जो **उद्देसे** (आ.नि. १४०) इत्यादि गाथा में बताये है। उसमें विकल्प रूप काल नाम का भेद है। उसके ग्यारह भेद जो **दव्वे** (६५९) इत्यादि गाथा में बताये है। उसका छठवा भेद उपक्रम काल है। उपक्रम काल के दो भेद है – सामाचार्युपक्रमकाल और यथायुष्कोपक्रमकाल। सामाचार्युपक्रमकाल के तीन भेद है – ओघसामाचारी, इच्छाकारादिदशविधसामाचारी और पदविभागसामाचारी । ओघनिर्युक्ति ओघसामाचारी में आती है, जिसमें सामाचारी का संक्षेप में वर्णन होता है । उसकी मैं स्तुति करता हूँ।

(६) पिण्ड निर्युक्ति, दोष रहित विशुद्ध आहार ग्रहण के ज्ञान में कुशलता सम्पादन कराती है। उसकी रचना सुकोमल पदों से हुई है अतः सुनने में मधुर है। उसकी हम स्तुति करते हैं।

नन्दी-अनुयोगद्वार

(७) जैसे नाटक का प्रारम्भ मंगलरूप बारह प्रकार के वाजिंत्र के नाद से होता है जिसे नान्दी कहा जाता है, वैसे ही जिनमत स्वरूप नाटक का प्रारम्भ नन्दीसूत्र से होता है। नन्दीसूत्र में मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान का वर्णन है । नन्दीसूत्र हमारे आनन्द में अभिवृद्धि करें ।

(८) अनुयोगद्वार मोक्षनगर का द्वार है । आगम श्रुत एक घर है तो अनुयोगद्वार उसके सोपान है । अनुयोगद्वार सूत्र की जय हो ।

(९) उत्तराध्ययनसूत्र शान्तरस के अमृत की नदी समान है। उसमें छत्तीस प्रधान अध्ययन है । श्रीनेमिनाथ भगवान, श्रीपार्श्वनाथ भगवान, श्रीमहावीरस्वामि भगवान के तीर्थ में नारदादि ऋषि हुए । उन्होंने बनायें पैतालीस अध्ययन का समूह ऋषिभाषित के नाम से प्रसिद्ध है। इन दोनों सूत्रो की मैं पूजा करता हूँ ।

ग्यारह अंग

(१०) आचारांग में आचार का वर्णन है। उसकी पाँच चूडा अथवा चूलिका है। सूत्र में जो बातें बतानी बाकी रह गई है उसका अनुवाद चूलिका में होता है। आचारांग के महापरिज्ञा नाम के अध्ययन में आकाशगामिनी विद्या का विधि है। इस विद्या का सहारा लेकर श्री वज्रस्वामी ने बौद्धो ने जैन धर्म को हलका दिखाने के प्रयास को नाकाम किया था। (टी.-एकबार उत्तरा में अकाल पड़ा। उस समय श्री संघ को पट्ट के उपर बिठा कर वज्रस्वामी पुरिका नगरी में ले आये। वहाँ का राजा बौद्ध था। उसने जिनालय में पुष्प पूजा करने का निषेध किया। पर्युषणा पर्व में पुष्प पूजा न होने की वजह से संघ खिन्न हुआ। श्रावको ने वज्रस्वामी को इस तरह के अपमान से बचाने की विनती की। वज्रस्वामि ने आकाशगामिनी विद्या का प्रयोग किया। माहेश्वरी नगरी में हुताशन यक्ष के वन से और हिमवन्त पर्वत से श्रीदेवी के पास से लाखो फूल लाकर संघ को अर्पित किये। इस तरह वज्रस्वामि ने शासन की महती प्रभावना की।[१]) मैं आचारांग सूत्र का स्वीकार करता हूँ।

(११) सूत्रकृतांग सूत्र के दो श्रुतस्कन्ध है। इस सूत्र में बतायी गई युक्तियाँ तीन सौ तेसठ पाखण्डियों के अभिमान को चूरचूर करने के लिये वज्र जैसी है।[२]

(१२) स्थान का अर्थ है-अधिकार। स्थानांग में दस स्थान=अधिकार द्वारा जीवादि पदार्थो का निरूपण है। जिस प्रकार कल्पवृक्ष हर एक इष्ट वस्तु देता है, उस प्रकार स्थानांग सूत्र हर एक प्रश्न का उत्तर देता है। इस सूत्र में विशिष्ट पदार्थो का वर्णन है। कुछ एक प्रस्तुत है -

तीन प्रकार के इन्द्र है। देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मनुष्येन्द्र।

---

१. सन्दर्भ - कल्पसूत्र किरणावली टीका। उपा. श्री धर्मसागरजी। स्थविरावली पत्र-३४९। प्रवचन प्रकाशन)।

२. वज्र इन्द्र का हथियार है। वह कभी निष्फल नही जाता, न ही कोई शस्त्र उसे भेद सकता है। तीन सौ तेसठ पाखण्डी क्रियावादी वि. है।

+ *चार प्रकार के शूर है—क्षमाशूर, तपशूर, दानशूर और युद्धशूर ।*
+ *अचित्त वायुकाय के पाँच प्रकार है—*
  आक्रान्त, ध्वान्त, पीलित, शरीरानुगत, और सम्मूर्छित ।
  पाँच स्थान द्वारा जीव दुर्लभबोधि करने वाला कर्म उपार्जित करता है । अरिहंत का अवर्णवाद करने से, अरिहंत प्ररूपित धर्म का अवर्णवाद करने से, आचार्य-उपाध्याय के अवर्णवाद करने से, चार प्रकार के संघ का अवर्णवाद करने से, ब्रह्मचारी तपस्वी का अवर्णवाद करने से ।
+ *रोगोत्पत्ति के नौ स्थान है—भूखा रहना, अधिक खाना, अतिनिद्रा, अतिजागरण, मूत्रनिरोध, मलनिरोध, लम्बी सफर, प्रतिकूल भोजन, इन्द्रिय कोप ।*
+ *भगवन् ! जीव शुभ कर्म किस तरह बांधते है ? गौतम ! सम्यग्दर्शन की शुद्धि से, मन-वचन-काया के प्रशस्त योग से, इन्द्रिय के निग्रह से, क्रोध को जितने से, धर्म और शुक्ल ध्यान से, आचार्य-उपाध्याय-साधु और साधर्मिक की भक्ति करने से, दान-शील-तप-भाव रूप धर्म की प्रभावना करने से, वैराग्य से, निःसंगता से और संविभाग से । इस दस प्रकार से जीव शुभ कर्म बांधते है ।*

स्थानांग सूत्र को मैं नमन करता हूँ ।

(१३) समवायांग में एक से लेकर लक्षादि संख्या के अनुसार अर्थों का निरूपण है । सज्जनों का समूह जिसके गुणगान करता है ऐसे समवायांग की मैं स्तुति करता हूँ ।

(१४) पाँचवे अंग का नाम विवाहप्रज्ञप्ति है । इसके चालीस शतकों (अर्थाधिकार) में सेंकडो उद्देशक है, छत्तीस हजार प्रश्न और उसके उत्तर है । इसमें बहोत सारी युक्तियाँ एवं एक सरीखे पाठ है, इसलिये अल्पमति व्यक्ति के लिये कठिन है । नानाविध पदार्थ के कोशग्रन्थ समान भगवती विवाहप्रज्ञप्ति

जयवती है ।[१]

(१५) ज्ञाताधर्मकथा में साड़े तीन करोड कथा है । यह सूत्र उत्क्षिप्त[२] आदि कथानकों से रम्य है । यह सूत्र कल्याण का कारण हो ।

(१६) भगवान श्री महावीर के प्रधान दस श्रावक थे । उनका जीवनवृत्त उपासकदशा में है । यह अंग मुझे हमेशा विशद ज्ञान प्रदान करें ।

(१७) गौतम इत्यादि महाऋषि एवं पद्मावती इत्यादि महासती जिन्होंने संसार का अंत कर मुक्ति प्राप्त की, उनके सुकृतों का वर्णन अन्तकृद्दशा सूत्र में है । विद्वज्जनो को अनुरोध है कि वे इस सूत्र का स्मरण करें ।

(१८) अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र में चारित्रादि गुण सम्पदा से श्रेष्ठ जालि याने कि नमि वगैरह मुनि भगवन्त की साधना का वर्णन है, जिसके बल पे उन्हें अनुत्तर विमान की लक्ष्मी प्राप्त हुई । अनुत्तरोपपातिकदशा का में आश्रय करता हूँ ।

(१९) प्रश्नव्याकरणदशा दसवा अंग है । इसमें आश्रव और संवर के स्वरूप का निर्णय किया गया है । अंगुष्ठ, दीप, जल इत्यादि में अवतरण करने वाली देवताओं का वर्णन इस सूत्र में पाया जाता है । ऐसी महिमावन्त देवताओं की साधक विद्या इस सूत्र में है । यह सूत्र हमें सुख प्रदान करें ।

(२०) विपाकसूत्र में बीस अध्ययन है । इस सूत्र में मृगापुत्र, सुबाहु इत्यादि उदाहरण द्वारा भव्यजीवों को सुख और दुःख देनेवाले शुभ-अशुभ कर्म के विपाक अर्थात् फल परिणाम की शिक्षा दी गई है । विपाकसूत्र हमारा कल्याण करें ।

यह (वर्तमान में उपलब्ध) ग्यारह अंग श्री सुधर्मा स्वामी विरचित

---

१. भगवती के १९२५ उद्देशक गिने जाते है ।

२. उत्क्षिप्तज्ञात ज्ञाताधर्मकथा का पहला अध्ययन है ।

है । बाकी के दस गणधर श्री सुधर्मा स्वामी के पहले ही मोक्ष पा चुके थे। इसलिए उनके शिष्यो ने श्री सुधर्मा स्वामी की वाचना को ग्रहण किया था । स्तवकार ने भी इसी लिए प्रारम्भ में श्री सुधर्मा स्वामी को नमस्कार किया है ।

बारह उपांग

(२१) अंग के समीप रहने वाले सूत्र को उपांग कहा जाता है। पहला औपपातिक सूत्र आचारांग का उपांग है । अन्य आगमों में औपपातिक सूत्र का अतिदेश किया है। अतिदेश का अर्थ है–पुनरुक्ति से बचने के लिये जहाँ पर प्रस्तुत पदार्थ का विस्तार से वर्णन है उसका नामोल्लेख से निर्देश करना। जैसे **'सेसं जहा उववाइए'** कहकर औपपातिक सूत्र का अतिदेश किया है। औपपातिक सूत्र में देव और नारकों के उपपात का विस्तार से वर्णन है । विद्वज्जनों को विनति है कि आप इस सूत्र को नमन करें ।

आचारांग के शस्त्रपरिज्ञा अध्ययन के प्रथम उद्देशक में सूत्र है– **'एवमेगेसिं नो नायं भवइ'**। इसका अर्थ है – आत्मा का उपपात होता है—यह बात कुछ एक लोगों को ज्ञात नही है। इस सूत्र का यह तात्पर्य नहीं है कि—आत्मा का उपपात सर्वथा अज्ञात होता है, पर यह है कि – आत्मा का उपपात अल्प अंश में ज्ञात है पर विस्तार से अज्ञात होता है। आचारांग सूत्र की यह बात औपपातिक सूत्र में विस्तार से बताई गई है ।

(२२) राजप्रश्नीय सूत्र, सूत्रकृतांग का उपांग है । केशी गणधर ने प्रदेशी राजा को प्रतिबोधित किया था। मृत्यु के बाद वह सूर्याभदेव हुआ। प्रभु श्री वीर को वन्दन करने समवसरण में आया। उसका अद्भुत तेज देखकर श्रीगौतमस्वामि ने प्रभु को प्रश्न किया कि – 'इस देव का तेज अन्य देवो से श्रेष्ठ क्यों है ?' । उत्तर में प्रभु ने केशी–प्रदेशी का जीवनवृत्त कहा। केशी गणधर और प्रदेशी बीच के आत्म विषयक चर्चा हुई थी। आत्मा के अस्तित्व

को प्रमाणित करने वाली सैंकडो युक्तियाँ उस उपांग में है। मैं इसकी पूजा करता हूँ।

(२३) जीवाभिगम सूत्र, स्थानांग का उपांग है। इस में जीव और अजीव तत्व के दो-दो भेद बताकर निरूपण किया है। इस सूत्र में नौ प्रतिपत्तियाँ अर्थात् अधिकार है। बहुत सारे भेद-प्रभेद का वर्णन होने से यह सूत्र दुरूह प्रतीत होता है। हम इस सूत्र का ध्यान करते हैं।

(२४) प्रज्ञापना सूत्र, समवायांग का उपांग है। यह सूत्र श्री श्यामार्य अर्थात् कालिकाचार्य के निर्मल यश स्वरूप है। इस सूत्र में छत्तीस अधिकार द्वारा जीव और अजीव के नानाविध पर्यायों की प्ररूपणा की गई है। मैं इस सूत्र की स्तुति करता हूँ।

(२५) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति पाँचवा उपांग है। इसमें पहले जम्बूद्वीप की स्थिति का, तीर्थंकर के जन्म महोत्सव का तथा चक्रवर्तियों के दिग्विजय का विवरण है। हे भगवती ! जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ! आप को नमस्कार हो।

(२६) चन्द्रप्रज्ञप्ति और सूर्यप्रज्ञप्ति युगल बालक जैसे है। इन दोनों सूत्र के शब्द में और अर्थ में ज्यादा भेद नहीं है। मैं इनको प्रणाम करता हूँ।

(२७) निरयावलिका सूत्र में कालादि दस कुमारों का वर्णन है। कूणिक और चेटकराज के बीच महासंग्राम हुआ था। कालादि दस कुमार कूणिक के सौतेले भाई थे। उन्होंने इस संग्राम में भाग लेकर पाप उपार्जित किया परिणामतः वे नरक के अतिथि बने। निरयावलिका सूत्र का विजय हो।

(२८) श्रेणिक राज के पद्मादि पौत्र (निरयावलिका सूत्र में वर्णित कालादि दस कुमारों के पुत्र) थे। उन्होंने परमात्मा श्री महावीर के शिष्य बनकर कल्प अर्थात् वैमानिक देवलोक प्राप्त किया था। कल्पावतंसिका सूत्र में पद्मादि ऋषि का वर्णन है। सौधर्म, ईशान इत्यादि देवविमानों के कल्पावतंस (कल्पों में श्रेष्ठ) कहा जाता है। तप के प्रभाव से उसमें स्थान

तथा ऋद्धि प्राप्त करने वाले ऋषियों का वर्णन जिस सूत्र में है उसे कल्पावतंसिका कहते है । इस सूत्र की मैं उपासना करता हूँ ।

(२९) गृहस्थ भी संयम भाव से पुष्पित हो सकता है—यह उपदेश पुष्पिता सूत्र का केन्द्र बिन्दु है । चन्द्र और सूर्य नाम के राजा ने पूर्व भव में दीक्षा ली थी । बहुपुत्रिका नामक देवी को पूर्व भव में सन्तान नहीं थे। उसने भी दीक्षा ली थी । दीक्षा लेकर इन तीनो ने संयम की विराधना की। उसके फल का वर्णन गौतम स्वामि ने इस सूत्र में किया है। यह सूत्र हमारे सुख को विकसित करें ।

(३०) पुष्पचूलिका सूत्र में श्री ह्री इत्यादि देवियों के परिवार आदि का स्वरूप वर्णित है । पुष्पचूलिका मेरी प्रसन्नता के अनुकूल हो ।

(३१) वह्निदशा सूत्र अन्धकवृष्णि राजा के गोत्रज निषधादि बारह राजा के यश की माला जैसा है । यह सूत्र भक्ति में तत्पर जन की शुभ अवस्था को पुष्ट करें ।

(३२) उपांग सूत्र के बाद क्रम में नन्दी, अनुयोगद्वार का स्थान है। इन सूत्रों की स्तुति श्लोक सात और आठ में की है। इसलिये अब दो आर्या से तेरह प्रकीर्णक सूत्रों की स्तुति प्रस्तुत है । १. मरणसमाधि, २. महाप्रत्याख्यान, ३. आतुरप्रत्याख्यान, ४. संस्तारक, ५. चन्द्रवेध्यक, ६. भक्तपरिज्ञा, ७. चतुःशरण प्रकीर्णक, इन (सात) सूत्रो को मैं वन्दन करता हूँ।

(३३) ८. वीरस्तव, ९. देवेन्द्रस्तव, १०. गच्छाचार, ११. गणिविद्या, १२. द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, १३. तन्दुलवैचारिक प्रकीर्णक इन (छः) सूत्रों को मैं नमन करता हूँ। तेरह प्रकीर्णक सूत्रो के नामार्थ पाक्षिक सूत्र की अवचूर्णि में है ।

(३४) निशीथ का अर्थ है मध्यरात्रि । मध्यरात्रि की तरह गुप्त होने से इस सूत्र का निशीथ नाम है। यह सूत्र आचारांग सूत्र की पाँचवी चूलिका रूप है । इसमें विविध उत्सर्ग और अपवाद का निरूपण है । उद्घात और

अनुद्घात प्रायश्चित्त का आरोपण करने के स्थान इस सूत्र का मुख्य विषय है।[१] निशीथ सूत्र को मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ।

(३५) दशाश्रुतस्कन्ध में दस अध्ययन है। निर्युक्ति, भाष्य आदि द्वारा उसका बहुत अर्थविस्तार हुआ है। यह सूत्र गम्भीर है, अन्यमति इस सूत्र का तात्पर्य जानने में सर्वथा असमर्थ है। कल्पसूत्र, बृहत्कल्प नाम से प्रसिद्ध है। इसमें साध्वाचार का वर्णन है। व्यवहार सूत्र में साधु के व्यवहार का वर्णन है।

(३६) पंचकल्प में छः, सात, दस, बीस और बीयालीस प्रकार के आचार का विस्तृत वर्णन है। वह हमें वांछित फल प्रदान करें।

(३७) आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत इस पाँच प्रकार के व्यवहार है। सब से अन्तिम जीत व्यवहार है। वर्तमान में प्रायश्चित्त विधि इसके अनुसार ही चलता है। इसलिये यह प्रधान है। जीतकल्प तीर्थलक्ष्मी का वेष है। मैं उसका आश्रय करता हूँ।

(३८) महानिशीथ सूत्र की साधना पैंतालीस आयम्बिल से की जाती है। यह सूत्र महिमा रूप औषधियों के लिये चन्द्र समान है। विपरीत मति वाले इसे बाधा पहुँचाने के कतई समर्थ नहीं। मोक्षमार्गभूत इस सूत्र की मैं पूजा करता हूँ।

(३९) आगमों के अनेक व्याख्या प्रकार है। निर्युक्ति में सूत्र द्वारा प्रतिपादित अर्थ के भेद प्रकार का निरूपण होता है। भाष्य, सूत्र द्वारा प्रतिपादित अर्थ का विस्तार करता है। वार्तिक, सूत्र द्वारा प्रतिपादित उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थ की चिंता करता है। संग्रहणी, सूत्र द्वारा प्रतिपादित अर्थ का संग्रह करती है। चूर्णि का अर्थ अवचूर्णि है (संक्षिप्त व्याख्या)। टिप्पन में विषम पद की व्याख्या होती है। निरन्तर व्याख्या का नाम टीका है। आगमों का अर्थविस्तार करने वाले इन ग्रन्थो का सदा हमारे मन में निवास हो।

---

१. **उत्सर्ग**-मुख्यमार्ग, **अपवाद**-कारण होने पर निषिद्ध का आचरण। **उद्घात**-गुरु नाम का प्रायश्चित्त, **अनुद्घात**-लघु नाम का प्रायश्चित्त)।

(४०) बारहवा अंग पूर्व है, जिसका अपर नाम दृष्टिवाद है। दृष्टि का अर्थ है - दर्शन और वाद का अर्थ है - वदन। दृष्टिवाद सभी दर्शनों का मुख है। दृष्टिवाद की रचना ग्यारह अंग से पहले हुई है इसलिये इसे पूर्व कहते है। यह अर्थ से तीर्थंकर और सूत्र से गणधर द्वारा रचित है। पूर्व पाँच प्रकारका है। १. परिकर्म, २. सूत्र, ३. पूर्वानुयोग, ४. पूर्वगत, ५. चूलिका। परिकर्म में अनेक प्रकार और उपप्रकार है। सूत्र बाईस प्रकार का है। पूर्वानुयोग के मुख्य दो भेद है - प्रथमानुयोग और कालानुयोग। प्रथमानुयोग में चौबीस तीर्थंकर बारह चक्रवर्ति, आदि के चरित्र है। कालानुयोग में अष्टांग निमित्त है। चौदह पूर्व का समावेश पूर्वानुयोग में होता है। कहने में बाकी रहे विषय का कथन चूलिका में होता है। मैं दृष्टिवाद का ध्यान करता हूँ।

श्रुत के अनेक प्रकार है। आगाढ योग (क्रिया विशेष) से साध्य आगम, कालिक श्रुत कहलाता है। अनागाढ योग से साध्य आगम उत्कालिक श्रुत कहलाता है। अन्य रीत्या श्रुत के दो प्रकार है। अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य (अनंगप्रविष्ट)। आगमो में श्रुतपुरुष की मनोरम कल्पना की गई है। जिस तरह पुरुष के शरीर में बारह अंग होते है, जैसे कि-दो पैर, दो ऊरु (ऊरु=बाहरी जांघ) दो जंघा (जंघा=भीतरी जांघ) दो गात्रार्थ - पेट और कमर, दो हाथ, गला एवं सिर - उसी तरह श्रुतपुरुष के भी बारह अंग है। दायां पैर - आचारांग, बायां पैर-सूत्रकृतांग, दाहिनी जंघा-स्थानांग, बायीं जंघा-समवायांग, दाहिनी जंघा-विवाहप्रज्ञप्ति, बायीं जंघा-ज्ञाताधर्मकथा, पेट-उपासकदशा, कमर-अंतकृद्दशा, दाहिना हाथ - अनुत्तरोपपातिकदशा, बायां हाथ-प्रश्नव्याकरणदशा, गला-विपाकसूत्र, सिर-दृष्टिवाद। श्रुतपुरुष के अंगभूत आगमों को अंगप्रविष्ट कहा जाता है।[१] उससे व्यतिरिक्त आगमों को अंगबाह्य कहा जाता है। अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य का विभागीकरण अन्य

---

१. इच्चेतस्स सुतपुरिसस्स जं सुत्तं अंगभागठितं तं अंगपविट्ठं भण्णइ। (नन्दीसूत्र अवचूर्णि।)

रूप से भी किया गया है । गणधर रचित सूत्र अंगप्रविष्ट है, स्थविर रचित सूत्र अंगबाह्य है । नियत या निजक सूत्र अंगप्रविष्ट है, अनियत या अनिजक सूत्र अंगबाह्य है । इस तरह अनेक प्रकार से विभक्त श्रुत का मैं ध्यान करता हूँ ।

(४१) अंगविद्या नाम के आगम में पन्द्रह आदेश है । वे स्वप्न में आकर या अन्य रीत्या तीनों काल की घटना का जो कथन करते है वह सच साबित होता है । इस आगम में दिखाई गई विद्या पापरहित विधि से साध्य है । अंगविद्या मुझ पर प्रसन्न हो ।

(४२) विशेषणवती (श्री जिनभद्र क्षमाश्रमण), सम्मति (श्री सिद्धसेन सू.), नयचक्रवाल (श्री मल्लवादी सू.) तत्वार्थ (श्री उमास्वाति म.) ज्योतिषकरण्ड (पादलिप्तसू.), सिद्धप्राभृत (अज्ञात), वसुदेवहिण्डी (श्री संघदास ग.) इन ग्रन्थो को मैं प्रणाम करता हूँ ।

(४३) कर्मप्रकृति (शिवशर्मसू.) कर्म के स्वरूप का प्रतिपादक ग्रन्थ है । ऐसे पूर्वसूरि रचित प्रकरण अनेक है । यह प्रकरण ग्रन्थ सिद्धान्त रूप सागर से निकले अमृत की बुन्द जैसे है । इन प्रकरण ग्रन्थों को हम आत्मसात् करते है ।

(४४) व्याकरण, छन्द, अलंकार, नाटक, काव्य, तर्क, गणित इत्यादि मिथ्यादृष्टि प्रणित होने से मिथ्याश्रुत है फिर भी सम्यग्दृष्टि के स्वीकार से पवित्र बनता है । ऐसे श्रुतज्ञान की जय हो ।

(४५) श्री नमस्कार महामन्त्र हर एक सूत्र में अन्तर्निहित है और पाप का नाशक है । श्री सूरिमन्त्र शासन की प्रवृत्ति का प्रथम निमित्त है । इन दोनो मन्त्रो को मैं नमस्कार करता हूँ।

(४६) इस प्रकार जो पुरुष जिन प्रणित सिद्धान्त के इस स्तव रूप गुण गण कथा का पाठ करता है उस पुरुष पर श्रुतदेवता प्रसन्न होती है और वरदान देती है । इतना ही नहीं वह मुक्ति स्त्री, उस पुरुष के समागमन उत्सव

का अभिलाष करती है। सिद्धान्त स्तव के फल सर्व ज्ञात है। जिन प्रणित सिद्धान्त, प्रभाव सम्पन्न है। देवेन्द्र उपपात अध्ययन के पाठ से इन्द्र हाजिर होता है। संघ के कार्य के लिये उत्थानश्रुत के पाठ से गाँव को उद्वासित किया जा सकता है। समुत्थानश्रुत से उद्वासित गाँव को पुनः वासित कर सकते है। जिन प्रणित सिद्धान्त तत्काल फलदायी है। उदाहरण के तौर पर—एक नगर के तालाब में एक बड़ा देवताधिष्ठित कमल था। उसको कोई ले नहीं सकता था। राजा ने घोषणा की–'जो इस कमल को ला कर देगा उसके धर्म का मैं स्वीकार करूँगा'। अन्य धर्मी निष्फल हुए। मन्त्री ने जैन साधु को बुलाया। जैन साधु सचित्त जल को स्पर्श नहीं करते। उन्होंने कमल को तीन प्रदक्षिणा दी। तालाब की पाली पर खड़े रहकर ही पुण्डरीक अध्ययन का पाठ किया। कमल सहसा उछल के राजा की गोद में पड़ा। राजा जैन बन गया।

इस श्लोक के पूर्वार्ध में जिनप्रभव विशेषण के माध्यम से कवि ने अपना नाम गुप्त रूप से बताया है। गुप्तता का कारण औद्धत्य का परिहार है।[१]

• • •

---

१. **मूल की पुष्पिका** – इस प्रकार सिद्धान्त स्तवन समाप्त हुआ। संवत् १५१४ में फाल्गुन सुद १५ के दिन चम्पावती नगरी में तपागच्छाधिराज श्रीश्रीश्री सोमसुन्दरसूरि के शिष्याधिराज श्रीविशालराजसूरि के शिष्यो में शिरोरत्न (श्रेष्ठ) पण्डित मेरुरत्नगणि के शिष्य सिद्धान्तसुन्दर ने यह प्रत लिखी।

अवचूर्णि की पुष्पिका – इस प्रकार भट्टारक प्रभु श्रीविशालराजसूरि के शिष्य पण्डित सोमोदय गणि रचित श्री सिद्धान्त स्तव की अवचूर्णि समाप्त हुई। संवत् १५१४ में चैत्र वदि १ के दिन गुरु श्रीश्रीश्री पण्डित मेरुरत्नगणि के शिष्य सिद्धान्तसुन्दर ने यह प्रत लिखी।

સર્વસિદ્ધાંતસ્તવઃ પરિચય

– મુનિ વૈરાગ્યરતિવિજય

'સર્વસિદ્ધાંતસ્તવ' એક એવી કૃતિ છે જેની રચના બે મહાપુરુષોના નામે છે. આ.શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ. અને આ.શ્રી સોમતિલકસૂ.મ. મૂળભૂત રીતે તે આ. શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ.ની રચના છે. આ.શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ. ખરતરગચ્છના મહાન પ્રભાવક આચાર્ય હતા. તેમની પ્રતિભા બહુમુખી હતી. સ્વભાવથી તેઓ કવિ હતા છતાં તેમણે સિદ્ધાંતગ્રંથોની પણ રચના કરી છે. 'વિધિમાર્ગપ્રપા' તેમનો પ્રસિદ્ધ ગ્રંથ છે. 'વિવિધતીર્થકલ્પ', ઈતિહાસ અને પ્રવાસ-વર્ણનનો ગ્રંથ છે. તેમણે નાનામોટા સત્તર ગ્રંથની રચના કરી છે. તેમનો સમય વિક્રમની ચૌદમી શતાબ્દી છે. વિ.સં. તેરસો એકત્રીસમાં તેઓ વિદ્યમાન હતા. ઈતિહાસ કહે છે કે-તેમને રોજ એક નવું સ્તોત્ર બનાવવાનો નિયમ હતો. રોજ એક નવું સ્તોત્ર બનાવ્યા પછી જ તેઓ આહાર ગ્રહણ કરતા. આ રીતે તેમણે સાતસો નવાં સ્તોત્ર બનાવ્યાં. તેમાંથી આજે ઓગણસાઈઠ ઉપલબ્ધ છે. રોજ એક નવી ગાથા યાદ કરવામાં પણ કષ્ટ અનુભવતા આપણા જેવા બુદ્ધિના સુંવાળા જીવોને આ માનસ તપસ્યાનો અંદાજ આવવો મુશ્કેલ છે. પરાવર્તના, અનુપ્રેક્ષા અને ધર્મકથા નામના સ્વાધ્યાયનો વિનિયોગ રૂપ યોગ છે, આ.

સાહિત્યકાર ઉપરાંત તેઓ માંત્રિક પણ હતા. કવિ અને માંત્રિક આમ બે પ્રકારના પ્રભાવક. શ્રી ગૌતમસ્વામીથી ચાલ્યા આવતા સૂરિમંત્રના આમ્નાયનું તેમણે વિવરણ કર્યું છે. જે 'સૂરિમંત્ર-પ્રદેશવિવરણ'ના નામે પ્રસિદ્ધ છે. પાટણ પાસે પાર્શ્વનાથ ભગવાનનું પ્રસિદ્ધ તીર્થ છે-ચારૂપ. ચારૂપ અને ડીસાની વચ્ચે જઘરાલ નામનું ગામ છે. (ડીસા આજે જૂનાડીસા અને નવાડીસા

એમ બે ભાગમાં વહેંચાઈ ગયું છે. નવાડીસાથી પાંચ કિ.મી. દક્ષિણમાં જૂનાડીસા છે. જૂનાડીસાથી વીસ કિ.મી.દક્ષિણમાં જઘરાલ છે. હા. છસો વરસથી આ નામ અકબંદ છે.) અહીં તેમની મુલાકાત આ. શ્રી સોમતલિકસૂ.મ. સાથે થઈ. આ.શ્રી સોમતિલકસૂ.મ.ના શિષ્યની પાત્રા રાખવાની ઝોળી ઉંદર કાતરી ગયો. શિષ્ય તરત આ. શ્રી સોમતિલકસૂ.મ. પાસે આવ્યા. ઝોળી બતાવી. આ. શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ.એ આ જોયું. મંત્રજાપ કર્યો. થોડીવારમાં તો આખો ઉપાશ્રય ઉંદરોથી ઊભરાવા માંડ્યો. આ.શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ. એ બધા ઉંદરોને ઉપદેશ આપ્યો. જે ઉંદરે ઝોળી કાતરી હતી તેની પાસે ક્ષમા મંગાવી વિદાય કર્યો.

તેમને પદ્માવતી દેવી પ્રત્યક્ષ હતી. પદ્માવતી દેવીના નામે પરચા ઊભા કરી પોતાનો પ્રભાવ વધારવાનું કામ તેમણે કર્યું ન હતું. પદ્માવતી દેવી પ્રત્યક્ષ થયા ત્યારે તેમણે પોતાની ઈચ્છા વ્યક્ત કરી કે-'મારા રચેલાં સ્તોત્રો મારા કાળધર્મ પછી પણ ગવાતા રહે. એ નિમિત્તે મને પ્રભુભક્તિનો લાભ મળતો રહે તેવી મારી ભાવના છે. આ માટે મારે એ જાણવું છે કે ભવિષ્યમાં કયા ગચ્છનો અભ્યુદય થવાનો છે ? જે ગચ્છનો અભ્યુદય થવાનો હશે તેના આચાર્યને હું મારા સ્તોત્રો સમર્પિત કરવા માંગું છું.' પદ્માવતી દેવીએ આ. શ્રી સોમતિલકસૂ.મ.નું નામ સૂચવ્યું. અને તરત જ આ. શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ.એ આ. શ્રી સોમતલિકસૂ.મ.ને પોતે બનાવેલાં સાતસો સ્તોત્ર સમર્પિત કર્યા. આ.શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ. ખરતર ગચ્છના હતા. આ.શ્રી સોમતલિકસૂ.મ. તપાગચ્છના હતા. છતાં તેમને ગચ્છભેદ ન નડ્યો. સરસ્વતીના અને શ્રુતના સાચા ઉપાસકો આવા જ હોય.

આ.શ્રી સોમતિલકસૂ.મ., આ.શ્રી સોમપ્રભસૂ.મ.ના શિષ્ય હતા. તેમણે ચૌદ વરસની ઉંમરે દીક્ષા લીધી હતી. અઢારમે વરસે તેમને આચાર્ય પદ પ્રાપ્ત થયું હતું. તેમણે બૃહત્ક્ષેત્રસમાસ, સપ્તતિશતસ્થાન-પ્રકરણ નામનાં શાસ્ત્ર અને અગ્યાર વિવિધ અલંકારમય સ્તુતિઓની રચના કરી છે.

ભગવાનની વાણી પીસ્તાલીસ આગમમાં વણાયેલી છે. અગ્યાર અંગ, બાર ઉપાંગ, દસ પયન્ના, છ છેદસૂત્ર, ચાર મૂળ, નંદી અને અનુયોગદ્વાર આ

પ્રમાણે આગમોની વહેંચણી થઈ છે. સર્વસિદ્ધાંતસ્તવમાં પીસ્તાલીસ આગમની સ્તુતિ કરવામાં આવી છે. સાધારણ રીતે ભગવાનની, ભગવાનની વાણીની, અતિશયોની સ્તુતિ જોવા મળે છે. પણ સિદ્ધાંતની—આગમની નામ દઈને સ્તુતિ થઈ હોય તેવી રચનાઓ અલ્પ માત્રામાં છે. જાણકારોના કથન મુજબ આ પ્રકારની પહેલી રચના સર્વસિદ્ધાંતસ્તવ છે. આગમ સિવાય કેટલાક મહત્વપૂર્ણ શાસ્ત્રોની સ્તુતિ પણ અહીં પ્રસ્તુત છે.

સર્વસિદ્ધાંતસ્તવના છેતાલીસ શ્લોકમાં પીસ્તાલીસ આગમના નામ અને સામાન્ય પરિચય આપવામાં આવ્યો છે. સાધારણ રીતે પીસ્તાલીસ આગમોનો ક્રમ ઉપર જણાવ્યો તે મુજબ પ્રચલિત છે. અહીં અલગ ક્રમથી સ્તુતિ કરવામાં આવી છે. ચાર મૂળ, નંદી અને અનુયોગદ્વાર, ઋષિભાષિત, અગ્યાર અંગ, બાર ઉપાંગ, દસ પયન્ના, છ છેદસૂત્ર, દૃષ્ટિવાદ અને અંગવિદ્યા. ઋષિભાષિત અને અંગવિદ્યા પયન્નામાં ગણાય છે. તેમને અહીં સ્વતંત્ર સ્થાન અપાયું છે.

સ્તુતિના પ્રારંભમાં સૂરિદેવે સુધર્મા સ્વામિને નમસ્કાર કર્યા છે. આમ જોવા જઈએ તો ગૌતમ સ્વામિને નમસ્કાર કરવા જોઈએ. કેમકે તેઓ પહેલા ગણધર છે. દરેક તીર્થંકરોના પહેલા ગણધરનું વિશેષ સ્થાન હોય છે. તો સુધર્મા સ્વામિને નમસ્કાર કેમ ? આ સ્તોત્રના અવચૂર્ણિકાર 'પં. સોમોદયગણી' જણાવે છે કે-'અત્યારે જે આગમોનો પાઠ ચાલે છે તે સુધર્મા સ્વામિનો છે માટે તેમને પહેલા નમસ્કાર કર્યા છે.' પરમાત્મા શ્રી મહાવીરદેવની બે પ્રકારની પરંપરા છે. એક, પાટપરંપરા; બે, પાઠપરંપરા. પાટપરંપરા એટલે ગુરુશિષ્યની પરંપરા. પરમાત્મા શ્રી મહાવીરદેવ ગુરુ, શ્રીગૌતમસ્વામી, શ્રીસુધર્મા સ્વામી વગેરે શિષ્ય. પાઠપરંપરા એટલે આગમોના સૂત્રની વાચનાની પરંપરા. કલ્પસૂત્ર કહે છે કે—પરમાત્મા શ્રી મહાવીરદેવના ગણધર અગ્યાર અને ગણ નવ હતા. બે ગણધરોની સૂત્રરચના એક જ હતી તેથી તેમની અલગ ગણતરી નથી. સુધર્મા સ્વામી દીર્ઘાયુષી હતા તેથી શ્રીગૌતમસ્વામી વિ. ગણધરોએ પોતાના શિષ્ય શ્રી સુધર્મા સ્વામીને સોંપ્યા. તેમની શિષ્યપરંપરા સુધર્મા સ્વામીની શિષ્યપરંપરામાં વિલીન થઈ. તેમ પોતપોતાની સૂત્રપરિપાટી પણ સુધર્મા સ્વામિને સોંપી. તેથી તેમની પાઠપરંપરા પણ સુધર્મા સ્વામિની

પાઠપરંપરામાં વિલીન થઈ. અત્યારે આપણી પાસે જે આગમોનો પાઠ છે તે સુધર્મા સ્વામિનો છે. માટે આગમનો અનુયોગ કરતા તેમને પહેલા નમસ્કાર કરવામાં આવે છે.

આવશ્યક, દશવૈકાલિક, ઓઘનિર્યુક્તિ અને પિંડનિર્યુક્તિ આ ચાર મૂળ સૂત્ર છે, પીસ્તાલીસ આગમમાં એક જ આગમ શ્રાવક વાંચી શકે છે. તે છે—આવશ્યક એટલે પ્રતિક્રમણના સૂત્ર. સાધુ ભગવંતોને આગમ ભણવા યોગ કરવા પડે છે તેમ શ્રાવકને આવશ્યક નામનું આગમ ભણવા યોગ કરવા પડે. આ યોગનું નામ ઉપધાન છે. આવશ્યક નામનું આગમ એટલું મહત્વનું છે કે તેની ઉપર શ્રીભદ્રબાહુસૂ.મ. એ એકત્રીસસો શ્લોકની નિર્યુક્તિ રચી છે, અઢાર હજાર શ્લોકની ચૂર્ણિ છે, બાવીસ હજાર શ્લોકની વૃત્તિ છે. શ્રીજિનભદ્ર ગણિ ક્ષમાશ્રમણે તો 'વિશેષાવશ્યક' નામનું ભાષ્ય બનાવ્યું છે. (શ્લોક-૨-૩)

દશવૈકાલિકસૂત્રમાં સાધ્વાચારનું વર્ણન છે. દેવોને મેરૂપર્વત પ્રિય છે તેમ સાધુઓને આ સૂત્ર પ્રિય છે. (૪)★

ઓઘનિર્યુક્તિમાં ઓછા શબ્દોમાં સામાચારીનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. આ આગમ સાધુઓને પહેલા દિવસથી જ ભણાવવામાં આવે છે. (૫)

પિંડનિર્યુક્તિમાં સાધુઓને આહાર ગ્રહણ કરતી વખતે લાગતા બેતાલીસ દોષનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. (૬)

નંદીસૂત્રમાં પાંચ જ્ઞાનનું વિસ્તારથી વર્ણન છે. નાટકની શરૂઆતમાં મંગલરૂપે નાંદી વગાડવામાં આવે છે તેમ આગમની શરૂઆતમાં મંગલરૂપે પાંચજ્ઞાનરૂપ નંદીનું ઉચ્ચારણ કરવામાં આવે છે. (૭)

અનુયોગદ્વાર આગમનું પ્રવેશદ્વાર છે. અનુયોગ એટલે સૂત્રનું અર્થઘટન. ઉપક્રમ, નિક્ષેપ, અનુગમ અને નય દ્વારા સૂત્રનો અર્થ નિશ્ચિત થાય છે. (૮)

ઉત્તરાધ્યયનસૂત્ર શાંતરસનું સરોવર છે. ઋષિભાષિતસૂત્રમાં શ્રી નેમનાથભગવાન, શ્રીપાર્શ્વનાથ-ભગવાન, શ્રીમહાવીરસ્વામીભગવાનના

★ દરેક કૌંસમાં શ્લોક ક્રમાંક છે.

શાસનમાં થયેલા પ્રત્યેકબુદ્ધ મહર્ષિઓનો વચનબોધ છે. (૯)

આચારાંગસૂત્ર આચારનું પ્રતિપાદન કરે છે. તેના મહાપરિજ્ઞા અધ્યયનમાં આકાશગામિની વિદ્યા છે જેના સહારે શ્રી વજસ્વામીએ બૌદ્ધો સામે સંઘની પ્રભાવના કરી હતી. (૧૦)

સૂત્રકૃતાંગસૂત્રમાં ત્રણસોત્રેસઠ પાખંડીઓના અભિમાનનું ખંડન થાય તેવા પદાર્થો છે. (૧૧)

કલ્પવૃક્ષ પાસે જે ફળ માંગો તે મળે, સ્થાનાંગ પાસે જે જવાબ માંગો તે મળે. (૧૨)

સ્થાનાંગની જેમ સમવાયાંગમાં પણ એકથી દસ, સો, હજાર જેવી સંખ્યાના આધારે પદાર્થો ગુંથવામાં આવ્યા છે. (૧૩)

ભગવતીસૂત્રમાં છત્રીસહજાર પ્રશ્ન અને તેના જવાબ છે. (૧૪)

જ્ઞાતાધર્મકથામાં સાડાત્રણકરોડ કથાઓ છે. (૧૫)

ઉપાસકદશામાં શ્રીમહાવીરસ્વામીભગવાનના દસ શ્રાવકના ચરિત્ર છે. (૧૬)

અંતકૃદ્દશા નામના આગમમાં તે જ ભવમાં મોક્ષે જનારા ગૌતમ, પદ્માવતીવિ.ની સાધનાનું વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. (૧૭)

અનુત્તરોપપાતિકદશામાં સાધના કરી અનુત્તરવિમાનમાં જનારા એકાવતારી મહાપુરુષોની જીવનકથા છે. (૧૮)

પ્રશ્નવ્યાકરણદશા પ્રશ્નોત્તરરૂપ છે. તેમાં આસ્રવ અને સંવરના સ્વરૂપ અંગે પ્રશ્નોત્તરી છે. અંગુઠામાં, દીવામાં કે પાણીમાં દેવતાનું અવતરણ કેવી રીતે થાય તેની વિદ્યા આ આગમમાં છે. (૧૯)

સારાં અને ખરાબ કર્મનો પરિણામ શું આવે છે તેનું જીવંત નિરૂપણ વિપાકસૂત્રમાં છે. (૨૦)

ઉપાંગસૂત્રો બાર છે. ઔપપાતિકસૂત્ર આચારાંગસૂત્રનું ઉપાંગ છે.

તેમાં દેવ અને નરકમાં ઉત્પત્તિ કેવી રીતે થાય છે તેનું વર્ણન છે. બીજા આગમોમાં સંક્ષેપમાં કહેલી વાતોનું અહીં વિસ્તારથી નિરૂપણ કરવામાં આવ્યું છે. (૨૧)

રાજપ્રશ્નીય સૂત્રકૃતાંગસૂત્રનું ઉપાંગ છે. તેમાં કેશી ગણધરથી પ્રતિબોધ પામેલા પ્રદેશી રાજા સૂર્યાભવિમાનમાં દેવ થયા. શ્રીમહાવીરસ્વામીભગવાનને ઋદ્ધિ સાથે વંદન કરવા આવ્યા. તેમનું અદ્ભુત તેજ જોઈને સંઘે તેનું કારણ પૂછ્યું. જવાબમાં પ્રભુએ કેશી-પ્રદેશીનો સંવાદ કહ્યો. તે આ ઉપાંગનો વિષય છે. આત્માનું અસ્તિત્વ સાબિત કરતી તર્કબદ્ધ દલીલો અહીં જોવા મળે છે. (૨૨)

જીવાભિગમ, સ્થાનાંગ સૂત્રનું ઉપાંગ છે. તેમાં જીવ અને અજીવનું બે-બે પ્રકારે નવ ભાગમાં વર્ણન છે. આ આગમ પદાર્થોનો આકર ગ્રંથ છે. (૨૩)

પ્રજ્ઞાપના, સમવાયાંગ સૂત્રનું ઉપાંગ છે. તેના રચયિતા શ્રી શ્યામાર્ય છે. તેના છત્રીસ પદોમાં જીવ અને અજીવનું વિસ્તારથી વર્ણન કરવામાં આવ્યું છે. (૨૪)

જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ, ભગવતીનું ઉપાંગ છે. તેમાં જંબૂદ્વીપ, ભગવાનનો જન્મમહોત્સવ, ચક્રવર્તિના દિગ્વિજયનું વર્ણન છે. તેને જૈન ભૂગોળનો ગ્રંથ કહી શકાય. (૨૫)

ચંદ્રપ્રજ્ઞપ્તિ અને સૂર્યપ્રજ્ઞપ્તિમાં અનુક્રમે ચંદ્ર અને સૂર્ય વિષે વિચાર કરવામાં આવ્યો છે. આ અને હવે પછીના ઉપાંગોનો કયા અંગ સાથે સંબંધ છે તે વિષે સ્તવકાર મૌન છે. (૨૬)

નિરયાવલિકા આઠમું ઉપાંગ છે. શ્રેણિકના પુત્ર કોણિક અને ચેટકરાજા વચ્ચે મોટું યુદ્ધ થયું હતું. કરોડો લોકોનો સંહાર થયો હતો. મોટા ભાગના નરકના અતિથિ બન્યા હતા. કોણિકના સાવકા ભાઈ કાલ વિ. દસ રાજકુમારોને કેંદ્રમાં રાખી પાપની સજાનું વર્ણન આ સૂત્રનો વિષય છે. (૨૭)

કલ્પાવતંસિકા નવમું ઉપાંગ છે. શ્રેણિકના વંશમાં થયેલા પદ્મવિ. રાજકુમારો આરાધના કરી દેવલોકમાં ગયા તેનું વર્ણન અહીં છે. (૨૮)

પુષ્પિતામાં ચંદ્ર, સૂર્ય અને બહુપુત્રિકાએ કરેલી સંયમની વિરાધનાનું વર્ણન છે. (૨૯)

પુષ્પચૂલિકામાં શ્રી, હ્રી વિ. દેવીઓનું વર્ણન છે. (૩૦)

વહ્નિદશામાં યદુવંશના રાજાઓના ઇતિહાસનું વર્ણન છે. (૩૧)

પયન્ના સૂત્ર દસ ગણાય છે. સર્વસિદ્ધાંતસ્તવમાં બે શ્લોકમાં તેર ગ્રંથનો નામોલ્લેખ પ્રાપ્ત થાય છે. (૩૨-૩૩)

છેદસૂત્ર છ છે. પહેલું નિશીથસૂત્ર આચારાંગની પાંચમી ચૂલા છે. નિશીથનો અર્થ મધ્યરાત્રિ છે. મધ્યરાત્રિની જેમ તેને ગુપ્ત રાખવામાં આવે છે. નિશીથ, બૃહત્કલ્પ અને વ્યવહારસૂત્ર નામના છેદસૂત્રમાં સાધ્વાચાર, ઉત્સર્ગ-અપવાદ અને પ્રાયશ્ચિત્તનું વર્ણન છે. દશાશ્રુતસ્કંધ નામનું છેદસૂત્ર વિશાળ છે. પર્યુષણમાં વંચાતું કલ્પસૂત્ર આ સૂત્રનું આઠમું અધ્યયન છે. જીતકલ્પ નામના છેદસૂત્રમાં પાંચ પ્રકારના વ્યવહાર દર્શાવ્યા છે. તેમાં દર્શાવેલા જીત વ્યવહાર અનુસાર આજે પ્રાયશ્ચિત્ત અપાય છે. મહાનિશીથ નામનું છેદસૂત્ર અતિશય મહિમાવંતું છે. (૩૪-૩૮)

આગમો ઉપર નિર્યુક્તિ, ભાષ્ય, વાર્તિક, સંગ્રહણી, ચૂર્ણી, ટિપ્પણ, ટીકા રચાયા છે, તે પણ પૂજનીય છે. (૩૯)

દૃષ્ટિવાદ નામના બારમાં અંગમાં ચૌદ પૂર્વ સમાય છે. તેના પાંચ ભેદ છે. બધા જ આગમોને શરીરનો આકાર આપી પ્રવચનપુરુષની રચના થાય છે. આમ પ્રતિમા સ્વરૂપે પણ શ્રુતની ઉપાસના થઈ શકે છે. (૪૦)

અંગવિદ્યા નામના આગમમાં સ્વપ્નમાં આવી ફળકથન કરે તેવી વિદ્યાની સાધનાનો વિધિ છે. (૪૧)

આગમની સ્તુતિ ઉપરાંત આ સ્તવમાં અન્ય શાસ્ત્રોની પણ સ્તુતિ કરવામાં આવી છે. એક મહત્વનું વિધાન અહીં જોવા મળે છે કે વ્યાકરણ, છંદ, અલંકાર, નાટક, કાવ્ય, તર્ક, ગણિત જેવા શાસ્ત્રો મિથ્યાદૃષ્ટિએ બનાવેલાં છે તેથી આત્મસાધનામાં નિરૂપયોગી છે છતાં તે સમ્યગ્દૃષ્ટિના હાથમાં આવે તો શ્રુતજ્ઞાન બને છે. (૪૪)

આથી તેવા શાસ્ત્રોની રચના કરતા મુનિ ભગવંતોને હલકી નજરે જોવા તે શ્રુતદેવતાનું અપમાન છે.

અંતમાં, આચાર્યશ્રી નવકારમંત્રને નમસ્કાર કરતા કહે છે કે નવકાર તમામ શાસ્ત્રોના એકએક અક્ષરમાં સમાયેલો છે. શાસનની પ્રવૃત્તિનો આરંભ સૂરિમંત્રથી થાય છે માટે તે પણ નમસ્કાર પાત્ર છે. (૪૫)

પૂ.આ.શ્રી જિનપ્રભસૂ.મ. એ માત્ર છેતાલીસ ગાથામાં આગમોનો મહિમા ગુંથ્યો એટલું જ નહીં તે આપણા સુધી પહોંચે એ માટે આ.શ્રી સોમતિલકસૂ.મ.ને સમર્પિત કર્યો. આ કાળમાં આવા ભવ્ય સમર્પણની વાત સાંભળવા મળે એ પણ સદ્ભાગ્ય જ ગણાય.

૨૦૬૭ મહા સુદ આઠમ, કાત્રજ

● ● ●

अनुक्रमः–

प्रकाशकीय ३

Editor's Note 4

पुरोवचन ६–९

सर्वसिद्धान्तस्तवः सारानुवाद (हिन्दी) १०–२२

સર્વસિદ્ધાંતસ્તવઃ પરિચય ૨૩-૩૦

अनुक्रमः ३१

१. सर्वसिद्धान्तस्तवः (मूल तथा अवचूरि) १–२०

परिशिष्ट

१. सर्वसिद्धान्तस्तवः (मूल) २१–२४

२. श्लोकानुक्रमणिका २५–२६

३. उद्धरणस्थलसङ्केत २७

४. पाठान्तर २८–३२

५. व्याख्याकोश ३३–३४

६. सम्पादनोपयुक्तग्रन्थसूची ३५

सर्वसिद्धान्तस्तवः

— आ.श्रीजिनप्रभसूरिः

सर्वसिद्धान्तस्तवः

[मू०] नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै
सुधर्मणे च श्रुतभक्तिनुन्नः[1] ।
निरुद्धनानावृजिनागमानां
जिनागमानां स्तवनं तनोमि ॥१॥ (उपेन्द्रवज्रा)

(अव०) ध्यायन्ति **श्रीवि**शेषाय गतावे**शा ल**येन यम् ।
स्तुतिद्वा**रा जय**श्रीदः श्रीवीरो **गुरु**गौरवः ॥१॥

पुरा श्रीजिनप्रभसूरिभिः प्रतिदिन-नव-स्तव-निर्माण-पुरस्सर-निरवद्याहार-ग्रहणाभिग्रहवद्भिः प्रत्यक्षपद्मावतीदेवी[1]वचसाऽभ्युदयिनं श्रीतपागच्छं विभाव्य भगवतां श्रीसोमतिलकसूरीणां स्वशैक्षशिष्यादि-पठन-विलोकनाद्यर्थं यमक-श्लेष-चित्रच्छन्दो-विशेषादि-नव-नव-भङ्गी-सुभगाः सप्तशतमिताः स्तवा उपदीकृता[2] निजनामाङ्किता[3]स्तेष्वयं सर्वसिद्धान्तस्तवो बहूपयोगित्वाद्विव्रियते ॥

गुरुभ्यः[1] श्रुतदेवतायै=सरस्वत्यै सुधर्मणे च पञ्चमगणधराय नत्वा त्रिषु नतिक्रियाभिप्रेयत्वाच्चतुर्थी[2] । श्रुतभक्तिप्रेरितोऽहं निरुद्धा=रुद्धा नाना=अविरतिकषायादिभिर्बहुविधानां वृजिनानां=पापानां आगमाः=प्रसरणानि[3] यैस्तेषां जिनागमानां=श्रीवीरसिद्धान्तानां स्तवनं करोमि ॥१॥

[मू०] सामायिकादिक-षडध्ययनस्वरूप-
मावश्यकं शिवरमावदनात्मदर्शम् ।
निर्युक्ति-भाष्य-वर-चूर्णि-विचित्रवृत्ति-
स्पष्टीकृतार्थनिवहं हृदये वहामि ॥२॥ (वसन्ततिलका)

(अव०) अवश्यकरणादावश्यकं सामायिकादिकानि[१] = सामायिक-चतुर्विंशतिस्तव-वन्दनक-प्रतिक्रमण-कायोत्सर्ग-प्रत्याख्यान रूपाणि यानि[२] षडध्ययनानि तत्स्वरूपं शिवरमाया वदनात्मदर्शं= वदनदर्पणतुल्यम् । पुनः किं विशिष्टं ? **निर्यु०**=निर्युक्तिः श्रीभद्रबाहुकृता ३१ (एकत्रिंशत्) शतप्रमाणा, भाष्यं= सूत्रार्थप्रपञ्चनं[३], वरा चूर्णिः १८ (अष्टादश)सहस्रप्रमाणा पूर्वर्षिविहिता विचित्रा, वृत्तिः[४]= अनुगतार्थ-कथनम् २२ (द्वाविंशति) सहस्रप्रमिता एताभिः स्पष्टीकृता अर्थनिवहा[५] यस्य तथाविधं हृदये वहामि=स्मरामि ॥२॥

[मू०] युक्तिमुक्तास्वातिनीरं प्रमेयोर्मिमहोदधिम् ।
विशेषावश्यकं स्तौमि महाभाष्यापराह्वयम् ॥३॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) युक्तय एव मुक्ता मौक्तिकानि तासां निष्पादकत्वा[१]-त्स्वातिनीरं प्रमेयाः= पदार्थास्त एवोर्मयः[२]=कल्लोलास्तेषां महोदधिम् । महाभाष्यमित्यपर आह्वयो=नाम यस्य तद्विशेषावश्यकं स्तौमि ॥३॥

[मू०] दशवैकालिकं मेरुमिव रोचिष्णुचूलिकम् ।
प्रीतिक्षेत्रं सुमनसां सत्कल्याणमयं स्तुमः ॥४॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) विकालेन अपराह्णरूपेण निर्वृत्तानि=वैकालिकानि दश अध्ययनानि यत्र तत् श्रीशय्यम्भवसूरिकृतं दशवैकालिकं मेरुमिव रोचिष्णू=दीप्ते चूलिके ***इह खलु०*** (द०वै०चू०१) ***चूलिअं तु पव०*** (द०वै०चू०२) रुपे यत्र । पक्षे चूला ४० (चत्वारिंशत्) योजनमाना । सुमनसाम्=उत्तमानाम्, पक्षे देवानां प्रीतिस्थानं सत्क०=श्रेयोमयम् पक्षे[१] सुवर्णमयं स्तुमः ॥४॥

[मू०] उद्यामुपोद्घातविकल्पकाल-
भेदप्रभेदप्रतिभेदरूपाम् ।
मिताभिधानाममिताभिधेयां
नौम्योघनिर्युक्तिम[1]मोघयुक्तिम् ॥५॥ (उपेन्द्रवज्रा)

(अव०) उद्यां=प्रशस्यां मिताभिधानां=स्तोकशब्दां अमिताभि-धेयां=बह्वर्थां अमोघयुक्तिं=सफलयुक्तिम् ओघनिर्युक्तिं नौमि=स्तौमि[1] । किं विशिष्टाम् ? **उपो०** उपोद्घातः= शास्त्रस्यादिः । तस्य विकल्पा=द्वाराणि ★**उद्देसे निद्देसे अनिग्गमे खित्तकाल**[2] इत्यादीनि २६ (षड्विंशतयः) (आ०नि०१४०) तत्र विकल्परूपः कालः तस्य भेदाः ११ (एकादश) नामस्थापनाद्रव्यादयः •**दव्वे अद्ध अहाउअ उवक्कमे** (आ०नि०६६०) इत्यादिगाथयोक्ताः । तेषु षष्ठस्य[3] भेदस्योपक्रमकालस्य प्रभेदौ सामाचार्युपक्रमकालः यथायुष्कोपक्रमकालश्च[4] । तयोः प्रथमस्य त्रयः प्रतिभेदाः ओघसामाचारी, इच्छाकारादिदशविधसामाचारी, पदविभाग-सामाचारी (च) त्रि(ते)षु ओघः=सामान्यं सङ्क्षेपाभिधानरूपा सामाचारी ओघसामाचारी[5] तद्रूपा ओघनिर्युक्तिः श्रीभद्रबाहुस्वामिना नवम-पूर्वात्तृतीयादाचाराभिधवस्तुनो[6] विंशतितमप्राभृतान्निर्यूढा साम्प्रति-कसाधूनां हिताय अस्मिन्काले स्थिरीकृता श्रीआवश्यकनिर्युक्तौ गणधर-वादस्याग्रे । सम्प्रति च सुखपाठाय पृथग्ग्रन्थरूपा विहिताऽस्ति, ताम् ॥५॥

[मू०] पिण्डविधिप्रतिपत्तावखण्डपाण्डित्यदानदुर्ललिताम् ।
ललितपदश्रुतिमृष्टाम[1]भिष्टुमः पिण्डनिर्युक्तिम् ॥६॥ (आर्या)

★ उद्देसे निद्देसे अनिग्गमे खित्तकाल पुरिसे अ ।
कारण पच्चय लक्खण नए समोआरणाणुमए ॥२४०॥

• दव्वे अद्ध अ अहाउय उवक्कमे देसकालकाले य ।
तह य पमाणे वण्णे भावे पगयं तु भावेणं ॥६६०॥

(अव०) पिण्डस्य=आहारस्य विधिः=दोषरहितत्वेन विशुद्धि-[१]स्तज्ज्ञाने सम्पूर्ण-कौशलवितरणासक्तां, **ललि०** सुकोमलानां पदानां श्रुतिः=श्रवणं तया मृष्टां=[२]मधुराम् । पिण्डनिर्युक्तिं वयमभिष्टुमः ॥६॥

[मू०] प्रवचननाटकनान्दीप्रपञ्चितज्ञानपञ्चकसतत्त्वा ।
अस्माकममन्दतमं कन्दलयतु[१] नन्दिरानन्दम् ॥७॥ (आर्या)

(अव०) प्रव० प्रवचनं=जिनमतमेव नाटकं तत्र नान्दी= द्वादश-तूर्यनिर्घोषस्तन्मूलत्वान्नाटकस्य, प्रपञ्चितं=प्रकटीकृतं ज्ञानपञ्चकस्य= मति-श्रुतावधि-मनःपर्याय-केवलज्ञानरूपस्य सतत्त्वं=स्वरूपं यया । सा नन्दीरस्माकं अमन्दतमं=बहुतरं आनन्दं कन्दलयतु=वर्धयतु ॥७॥

[मू०] अनुयोगद्वाराणि द्वाराणीवापुनर्भवपुरस्य ।
जीयासुः श्रुतसौधाधिरोहसोपानरूपाणि ॥८॥ (आर्या)

(अव०) अनु० श्रुतमेव सौधं=गृहं तदारोहे सोपानरूपाणि । अपुनर्भवपुरस्य= मोक्षनगरस्य द्वाराणीवाऽनुयोगद्वाराणि जीयासुः ॥८॥

[मू०] अनवमनवमरससुधाह्रदिनीं षट्त्रिंशदुत्तराध्ययनीम् ।
अञ्चामि पञ्चचत्वारिंशतमृषिभाषितानि तथा ॥९॥ (आर्या)

(अव०) अन० अनवरमो=रम्यो यो नवमरसः=शान्ताख्यः[१] स एव सुधा=अमृतं तस्या ह्रदिनीं=नदीं **षट्त्रि०** षट्त्रिंशतद् यानि उत्तराणि=प्रधानान्यध्ययनानि ताम् । अहम् अञ्चामि=पूजयामि[२] । तथा पञ्चचत्वारिंशतं श्रीनेमि-श्रीपार्श्व-श्रीवीर-तीर्थवर्तिभिर्नारदादिभिः प्रणितानि अध्ययनविशेषान्(नि) ॥९॥

[मू०] उच्चैस्तरोदञ्चितपञ्चचूड-
माचारमाचारविचारचारु ।

महापरिज्ञास्थनभोगविद्य-
माद्यं प्रपद्येऽङ्गमनङ्गजैत्रम् ॥१०॥ (इन्द्रवज्रा)

(अव०) उच्चै० आचारविचारचारु=योगाद्यनुष्ठानपूर्वं यथा स्यादेवम् । आचारप्रतिपादकत्वादाचारं नाम आद्यमङ्गम् अहं प्रपद्ये=श्रये किं विशिष्टं ? **उच्चै०** उच्चैस्तराः शब्दार्थाभ्यां अतिशायिन्यः उदञ्चिताः=प्रकटीकृताः पञ्चचूडा येन तत् उक्तशेषानुवादिनोऽधिकार विशेषाश्चूडासञ्ज्ञाः । पुनः किं विशिष्टं ? **महा०** महापरिज्ञानामाध्ययनं तत्रस्था आकाशगामिनी विद्या यस्यां, तत एवोद्धृत्य श्रीवज्रस्वामिना प्रभावना कृता ॥१०॥

[मू०] त्रिषष्ठिसंयुक्तशतत्रयीमित-
प्रवादिदर्पाद्रिविभेदह्रादिनीम् ।
द्वयश्रुतस्कन्धमयं शिवश्रिये
कृतस्पृहः सूत्रकृताङ्गमाद्रिये ॥११॥ (इन्द्रवंशा)

(अव०) त्रिष० द्वयश्रुतस्कन्धमयं[१]=श्रुतस्कन्धद्वयरूपं सूत्रकृताङ्गं शिवश्रिये कृतस्पृहोऽहं आद्रिये=आश्रयामि । **किं विशिष्टं ? त्रिष०** त्रिषष्ठ्यधिकशतत्रयमितां प्रवादिनः क्रियावादिप्रभृतयः [२]यदुक्तं-

असीससयं किरिआणं अकिरियवाईण होइ चूलसीई ।
अन्नाणीसत्तसट्ठी वेणइआणं य बत्तीसं ॥

तेषां दर्पाद्रिविभिदे ह्रादिनीं=वज्रसमम् ॥११॥

[मू०] स्थानाङ्गाय दशस्थानस्थापिताखिलवस्तुने ।
नमामि[१] कामितफलप्रदानसुरशाखिने ॥१२॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) स्थानां० कामितफलप्रदानसुरशाखिने, तिष्ठन्ति प्रति-

पाद्यतया जीवादयः पदार्था इति स्थानान्यधिकारविशेषास्तथाहि—

तओ इंदा पन्नत्ता-तं जहा देविंदे असुरिंदे मणुस्सिंदे ।

[स्थानांग ३-१(१२७)]

चत्तारि सूरा पन्नता तं जहा-खंतिसूरे तवसूरे दाणसूरे जुद्धसूरे[१] ।

[स्थानांग ४-१(३१७)]

पंचविहा अचित्तवाउकाइआ पन्नत्ता-तं जहा-अक्कंते धंते पीलिए सरिराणुमए[२] संमुत्थिए [(स्थानांग ५०३ (४४४)]

पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लहबोहिअत्ताए कम्मं पकरंति । तं जहा-अरहंताणं अवन्नं वयमाणे, अरहंतपण्णतस्स धम्मस्स, आयरियउवज्झायाणं, चाउवन्नस्स संघस्स[३], विविक्कतवबंभचेराणं अवन्नं वयमाणे ।

[(स्थानांग ५-२ (४२६)]

नवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ति सिआ । अच्चासणाए अहिआसणाए अइनिद्दयाए अइजागरियाए उच्चानिरोहेणं पासवणनिरोहेण अद्धागमणेणं भोअणपडिकुलणयाए इंदियत्थकोवणयाए [(स्थानांग ९- (६६७)]

कहण्णं भंते जीवा सुहं कम्मं बंधंति ? । गोअमा ! सम्मद्दंसण-सुद्धीए, पसत्थमण-वयणकायजोएणं, इंदियनिग्गहेणं, कोहविजयेणं, धम्मसुक्कज्झाणेणं, आयरियउवज्झाय-[६]साहु-साहम्मिअभत्तीए, दाणसील-तवभावणप्पभावणाए, वेरग्गेणं, निस्संगेणं, संविभागेणं । [७]इच्चेइहिं दसहिं ठाणेहिं जीवा सुहं कम्मं बंधंति । इत्यादयः ।

एवमेतेषु दशस्थानेषु स्थापितान्यखिलवस्तुनि यत्र तस्मै स्थानाङ्गाय[८] अहं नमामि। ***विवक्षातः कारकाणि*** इति न्यायात् स्थानाङ्गायेति सम्प्रदानम् ॥१२॥

[मू०] तत्तत्सङ्ख्याविशिष्टार्थप्ररूपणपरायणम् ।

संस्तुमः समवायाङ्गं समवायैः स्तुतं सताम् ॥१३॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) तत्त० तास्ता एकादिदशान्ताः सङ्ख्यास्ताभिर्विशिष्टा ये अर्थास्तेषां प्ररूपणं=कथनम् । तत्र परायणं=तत्परं सतां समवायैः= समूहैः स्तुतं समवायाङ्गं[1] वयं संस्तुमः ॥१३॥

[मू०] या षट्त्रिंशत्सहस्रान् प्रतिविधिसजुषां बिभ्रती प्रश्नवाचं,
चत्वारिंशच्छतेषु प्रथयति परितः श्रेणिमुद्देशकानाम् ।
रङ्गद्भङ्गोत्तरङ्गा नयगमगहना दुर्विगाहा विवाह-
प्रज्ञप्तिः पञ्चमाङ्गं जयति
भगवती सा विचित्रार्थकोशः ॥१४॥ (स्रग्धरा)

(अव०) या ष० प्रतिविधिः=उत्तरं तेन सहितानां प्रश्नवाचां षट्त्रिंशत्सहस्रान् बिभ्रती=दधती या चत्वारिंशच्छतेषु अधिकारविशेषेषु, उद्देशकानां श्रेणिं परितः=सर्वतः प्रथयति । सा विवाहप्रज्ञप्तिनाम्नी पञ्चमाङ्गम्[1] । रङ्गन्तो ये भङ्गा रचना विशेषाः तैरूत्तङ्गा **उ०** कल्लोलाः नया=युक्तयो गमाः=सदृशपाठास्तैर्गहना= गुपिला, अकुशलैर्दुर्विगाहा । विचित्रार्थकोशो जयति । भगव(ती)ति[2] पूजाभिधानम्[3] ॥१४॥

[मू०] कथानकानां यत्रार्द्धचतस्रः कोटयः स्थिताः ।
सोत्क्षिप्तादिज्ञातहृद्या ज्ञातधर्मकथा श्रिये ॥१५॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) कथा० यत्रार्द्धचतस्रः कथानकानां कोटयः स्थिताः सा ज्ञाताधर्मकथा नाम षष्ठमङ्गम् । उत्क्षिप्तादिभिर्ज्ञातैः=दृष्टान्तैर्हृद्या श्रियेऽस्तु ॥१५॥

[मू०] आनन्दादिश्रमणोपासक-
दशकेतिवृत्तसुभगार्थाः[1] ।

विशदामुपासकदशा
भावद्दशं मम दिशन्तु सदा ॥१६॥ (आर्या)

(अव०) आनं० आनन्दादयः श्रमणोपासकास्तेषां दशकं तस्य इतिवृत्तानि= चरितानि, तैः सुभगार्था उपासकदशानाममङ्गं विशदां भावद्दशं=ज्ञानं मम सदा दिशन्तु ॥१६॥

[मू०] महत्ऋषिमहासतीनां
गौतमपद्मावतीपुरोगाणाम्[१] ।
अधिकृतशिवान्तसुकृताः
स्मरतौच्चैरन्तकृद्दशाः कृतिनः ॥१७॥ (आर्या)

(अव०) मह० गौतमपद्मावतीप्रमुखाणां महत्ऋषिमहासतीनां अधिकृतानि= प्रकटितानि शिवान्तानि सुकृतानि यासु ता अन्तकृद्दशाः, हे ! कृतिन[१] ! उच्चैर्यूयं स्मरत ॥१७॥

[मू०] गुणैर्यदध्ययनकलापकीर्तिता
अनुत्तराः प्रशमिषु जालिमुख्यकाः ।
अनुत्तरश्रियमभजन्ननुत्तरो-
पपातिकोपपददशाः श्रयामि ताः ॥१८॥ (रुचिरा)

(अव०) गुणै० यदध्ययनकलापे कीर्तिताः=कथिताः प्रशमिषु =ऋषिषु गुणैश्चारित्रादिभिरनुत्तराः=प्रधाना जालिमुख्यकाः, जालि= नमिऋषिः स एव मुख्यो येषां ते जालिमुख्याः[१] । जालिमुख्या एव जालिमुख्यकाः, स्वार्थे कप्रत्ययः, अनुत्तराणि[२]= विजयादीनि पञ्च विमानानि तेषां श्रियम् अभजन् । अनुत्तरोपपातिकमिति उपपदं=पूर्वपदं यासां ता अनुत्तरोपपातिकदशाः अहं श्रयामि ॥१८॥

[मू०] अङ्गुष्ठाद्यवतरदिष्ट[1]देवतानां,
विद्यानां भवनमुदात्तवैभवानाम् ।
निर्णीतास्रवविधिसंवरस्वरूपाः,
प्रश्नव्याकरणदशा दिशन्तु शं नः ॥१९॥ (प्रहर्षिणी)

(अव०) अङ्गु०अङ्गुष्ठादिषु आदिशब्दाद्दीपजलादिषु अवतरो= अवतरणं तेन दिष्टाः= कथिता देवता यासाम् । तासाम् उदात्तवैभवानां= उत्कृष्टमहिम्नां विद्यानां भवनं=स्थानम् । आश्रवविधिः=कर्मपुद्गलादानं, संवरः=तन्निरोधः, निर्णीतं तयोः स्वरूपं यासु ताः प्रश्नव्याकरणदशा दशमाङ्गं नोऽस्माकम् शं=सुखं दिशन्तु ॥१९॥

[मू०] ज्ञातैर्मृगा[1]पुत्रसुबाहुवादिभिः
शासद्विपाकं सुखदुःखकर्मणाम् ।
द्विःपङ्क्तिसङ्ख्याध्ययनोपशोभितं
श्रीमद्विपाकश्रुतमस्तु नः श्रिये ॥२०॥ (इन्द्रवज्रा)

(अव०) ज्ञातै० मृगापुत्रसुबाहुवादिभिर्दृष्टान्तैः सुखदुःखकर्मणां विपाकं=परिणामं शासत्=शिक्षयत् ज्ञापयदित्यर्थः । केषां ? [1]भव्यजीवा- नामिति गम्यम् । **द्विःपं०** विंशत्यध्ययनालङ्कृतम् । श्रीमद्विपाक- श्रुतमेकादशमाङ्गं नः श्रियेऽस्तु । सुबाहुवादिभिरित्यत्र[2] **इवर्णा**देरित्यनेन सूत्रेण (सि०हे० १।२।२१) परतो वत्त्वम्[3] (परमते) । एतान्येका- दशाप्यङ्गानि श्रीसुधर्मास्वामिना रचितानि । अन्येषां गणभृतां पूर्व- निवृत्तत्वेन सर्वगणधर[4]शिष्याणां एतद्वाचनाग्रहणात्[5] । अत एवादौ श्रीसुधर्मा नमस्कृतः ॥२०॥

[मू०] प्रणिधाय यत्प्रवृत्ता[1] शास्त्रान्तरवर्णनातिदेशततिः ।
नमतौपपातिकं तत्प्रकटयदुपपातवैचित्रीम् ॥२१॥ (आर्या)

(अव०) प्रणि० यत्प्रणिधाय=स्मृत्वा शास्त्रान्तरेषु पदार्थवर्णनातिदेशानां ततिः[१]= श्रेणिः प्रवृत्ता, अतिदेशो[२]=अन्यत्र विस्तरेण प्ररूपितस्य वस्तुनः सङ्क्षेपेण कथनम्, तद् औपपातिकम् आचाराङ्गोपाङ्गम् । **उप०** देवनरनारकाणाम्[३] उपपात=उत्पादस्तस्य वैचित्रीं प्रकटयत् । हे ! विद्वांसो यूयं नमत । आचाराङ्गस्य शस्त्रपरिज्ञाध्ययनाद्योद्देशके[४] **एवमेगेसिं नो नायं भवइ**[५] इत्यादि । अत्र सूत्रे यदौपपातिकत्वमात्मनो निर्दिष्टं तदत्र[६] प्रपञ्चत इत्यर्थः । अङ्गस्योप=समीपे उपाङ्गम् ॥२१॥

[मू०] सूर्याभवैभवं विभावनदृष्टतीर्थ-
प्रश्नादनन्तरमिनाननिर्गतेन ।
केशिप्रदेशिचरितेन विराजिराज-
प्रश्नीयमिद्धमुपपत्तिशतैर्महामि ॥२२॥ (वसंततिलका)

(अव०) सूर्या० सूर्याभदेवस्य वैभवं=ऋद्धिस्तस्य विभावनेन=ईक्षणेन दृष्टं[१] यत्तीर्थं=प्रथमगणधरश्चतुर्विधः सङ्घो[२] वा तस्य प्रश्नात्=पृच्छाया अनन्तरम् इनस्य=श्रीवीरस्य आननं=मुखं ततो निर्गतेन । केशी गणभृत् प्रदेशी च राजा तयोश्चरितेन विराजि=शोभि । **उप०** युक्तिशतैरिद्धं=दीप्तं राजप्रश्नीयं सूत्रकृदुपाङ्गमहं महामि । प्रदेशी केशिना प्रतिबोधितो देवत्वमाप्य श्रीवीरं वन्दितुं समवसृतौ गतः । तत्रात्यद्भुतं तस्य तेजो वीक्ष्य श्रीसङ्घेन प्रश्नः कृतः । सर्वेभ्यो देवेभ्यः[३] किमित्ययमुत्कृष्ट ?[४] इति ॥२२॥

[मू०] जीवाजीवनिरूपि द्वेधा प्रतिपत्तिनवकक[१]मनीयम् ।
जीवाभिगमाध्ययनं ध्यायेमासुगमगमगहनम् ॥२३॥ (आर्या)

(अव०) जीवा० जीवाजीवनिरूपिण्यो द्वेधा=द्विप्रकाराः प्रतिपत्तयो=युक्तयस्तासां[1] नवकं[2] तेन रम्यम् । असुगमा=विषमा ये गमास्तैर्गहनं जीवाभिगमाध्ययनं स्थानाङ्गोपाङ्गं ध्यायेम=ध्यायामः । जीवानामुपलक्षणादजीवानामप्यभिगमो[3]=ज्ञानं यत्र तत् ॥२३॥

[मू०] षट्त्रिंशता पदैर्जीवाजीवभावविभावनीम्[1] ।
प्रज्ञापनां पनायामि श्यामार्यस्याऽमलं यशः ॥२४॥ (आर्या)

(अव०) षट्० षट्त्रिंशता पदैः=अधिकारैर्जीवाजीवभावप्ररूपिकां प्रज्ञापनां समवायाङ्गोपाङ्गं पनायामि[1]=स्तौमि। श्यामार्यस्य=कालिकाचार्यस्य अमलं यशस्तत्र तदधिकारात् ॥२४॥

[मू०] विवृताद्यद्वीपस्थिति-
जिनजनिमहचक्रिदिग्विजयविधये ।
भगवति जम्बूदीप-
प्रज्ञप्ते ! तुभ्यमस्तु नमः[1] ॥२५॥ (आर्या)

(अव०) विवृ० हे ! भगवति ! जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ते ! पञ्चमोपाङ्ग[1] ! । **विवृ०** विवृताः= प्रकटिता आद्यद्वीपस्य स्थितिर्जिनजन्ममहः[2] चक्रिणां दिग्विजयविधिश्च यया तस्यै तुभ्यं नमोऽस्तु ॥२५॥

[मू०] प्रणमामि चन्द्रसूर्यप्रज्ञप्ती
यमलजातिके[1] नव्ये ।
गुम्फवपुषैव नवरं
नातिभिदाऽर्थात्मनापि[2] ययोः ॥२६॥ (आर्या)

(अव०) प्रण० चन्द्रसूर्यप्रज्ञप्ती=चन्द्रसूर्यविचारप्रतिपादिके यमलजातिके सहजाते, नवरं=केवलं गुम्फवपुषैव[1], गुम्फेनैव नव्ये= भिन्नग्रन्थरूपे अहं प्रणमामि । ययोरर्थात्मनाऽपि न अतिभिदा=भेदः,

अपिशब्दात्शब्दतोऽपि ॥२६॥

[मू०] कालादिकुमाराणां महाहवारम्भसम्भृतैर्दुरितैः ।
दर्शितनरकातिथ्या निरयावलिका विजेषीरन्[1] ॥२७॥ (आर्या)

(अव०) काला० कालादिदशकुमाराणां चेटककोणि(क)वैरे[1] महाहवारम्भसम्भृतैः= महायुद्धारम्भोपार्जितैर्दुरितैः[2]=पापैर्दर्शितं नरकातिथ्यं=नरकभवप्राप्तिर्याभिस्ता[3] निरयावलिका विजेषीरन्=विजयन्ताम् । तत्र कालादिकुमाराणां वर्णनात् ॥२७॥

[मू०] पद्मादयः कल्पवतंसभूय-
मुपेयिवासः सुकृतैः शमीशाः ।
यत्रोदिताः श्रेणिकराजवंश्या
उपास्महे कल्पवतंसिकास्ताः ॥२८॥ (उपेन्द्रवज्रा)

(अव०) पद्मा० श्रेणिकराजवंश्याः पद्मादयः शमीशा=ऋषयः सुकृतैः कल्पवतंसभूयं=देवत्वं[1] उपेयिवासः=प्राप्ताः यत्रोदिताः=कथिताः, ताः कल्पवतंसिकाः वयम् उपास्महे ।

सोहम्मीसाणकप्पजाणि[2] कप्पठाणाणि ताणि कप्पवडिंसयाणि तेसु जे जेण तवविसेसेण उववन्ना इड्ढि वा पत्ता सवित्थरं वन्निज्जंति । याभिर्ग्रन्थपद्धतिभिस्ताः कल्पाः ॥२८॥

[मू०] चन्द्रसूर्यबहुपुत्रिकादिभि,
र्यत्र संयमविराधनाफलम् ।
भुज्यमानमगृणाद् गणाधिपः[1]
पुष्पिताः शमभिपुष्पयन्तु ताः ॥२९॥ (रथोद्धता)

(अव०) चन्द्र० यत्र संयमविराधनायाः फलं चन्द्रसूर्यौ राजानौ

पूर्वभवे गृहीतदीक्षौ, बहुपुत्रिकाऽनपत्या[१] पूर्वभवे प्रव्रजिता तदादिभिर्भुज्यमानं गणाधिपोऽगृणात्= जगाद । ताः पुष्पिताः शं=सुखं अभिपुष्पयन्तु=उत्फुल्लयन्तु । यत्र ग्रन्थेऽङ्गिनो गृहवासत्यागेन संयमभावपुष्पिता वर्णिताः ॥२९॥

[मू०] श्रीह्रीप्रभृतिदेवीनां चरित्रं यत्र सूत्रितम्[१] ।
ताः सन्तु मे प्रसादानुकूलिकाः पुष्पचूलिकाः ॥३०॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) श्रीह्रीप्रभृतिदेवीनां चरित्रं=परिवारादिस्वरूपं यत्र सूत्रितं=कथितम् । ताः पुष्पचूलिका मे=मम प्रसादानुकूलिकाः[१]= प्रसादतत्पराः सन्तु ॥३०॥

[मू०] वृष्णीनां निषधादीनां
द्वादशानां यशःस्रजः ।
पुष्णान्तु भक्तिनिष्णानां
दशां वृष्णिदशाः शुभाम् ॥३१॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) वृष्णी० निषधादीनां राज्ञां वृष्णीनां=अन्धकवृष्णिगोत्रजानां द्वादशानां यशःस्रजो=यशोमाला इव वृष्णिदशा भक्तिपराणां[१] शुभां दशां पुष्णन्तु ॥३१॥

[मू०] वन्दे मरणसमाधिं प्रत्याख्याने महातुरोपपदे ।
संस्तारचन्द्रवेध्यकभक्तपरिज्ञाचतुःशरणम् ॥३२॥ (आर्या)

(अव०) नन्द्यनुयोगद्वारयोः पूर्वं कथनादार्याद्वयेन त्रयोदशप्रकीर्णकानि स्तौति । **वन्दे०** अहं वन्दे मरणसमाधिं महा इति आतुर इति उपपदे ययोस्ते महाप्रत्याख्यान-आतुरप्रत्याख्याने संस्तार-चन्द्रवेध्यक-भक्तपरिज्ञा-चतुःशरणं समाहारः ॥३२॥

[मू०] वीरस्तवदेवेन्द्रस्तवगच्छाचारमपि च गणिविद्या ।
द्वीपाब्धिप्रज्ञप्तिं तन्दुलवैचारिकं च नुमः ॥३३॥ (आर्या)

(अव०) वीर० वीरस्तवः देवेन्द्रस्तवः गच्छाचारम् अपि च गणिविद्यां द्विपाब्धिप्रज्ञप्तिः तन्दुलवैचारिकं[१] च वयं नुमः । सर्वेषां नामार्थाः पाक्षिकसूत्रावचूर्णौ सन्ति ॥३३॥

[मू०] शिवाध्वदीपायोद्धातानुद्धातारोपणात्मने ।
चित्रोत्सर्गापवादाय निशीथाय नमो नमः[१] ॥३४॥ (अनुष्टुप्)

(अव०) शिवा०=मोक्षमार्गदीपाय **उद्धा०** उद्धातो=गुरु-प्रायश्चित्तविशेषः । अनुद्धातस्तु तद्विपरीतो लघुरित्यर्थः, तयोरारोपणम्= उचितस्थाने प्रयोजनम् । तदेव आत्मा=स्वरूपं यस्य तस्मै उद्धाता-ऽनुद्धातारोपणात्मने[१] । चित्रा=विविधा उत्सर्गापवादा[२] यत्र, उत्सर्गो= मुख्यमार्गः अपवादः=कारणे[३] प्रतिषिद्धसेवा । तस्मै निशीथं=मध्य-रात्रस्तद्वद्रहोभूतं यदध्ययनं तन्निशीथं तस्मै निशीथाय आचाराङ्गपञ्चम-चूडायै नमो नमः वीप्सायां द्वित्वम्[४] ॥३४॥

[मू०] निर्युक्तिभाष्यप्रमुखैर्निबन्धैः
सहस्रशाखीकृतवाच्यजातम् ।
दशाश्रुतस्कन्धमनात्तगन्धं
परैः सकल्पव्यवहारमीडे ॥३५॥ (उपजातिः)

(अव०) निर्यु० निर्युक्तिभाष्यप्रमुखैर्निबन्धैः ग्रन्थैः[१] सहस्र-शाखीकृतं=विस्तारितं वाच्यजातं यत्र । तं दशाध्ययनानां श्रुतस्कन्धं दशाश्रुतस्कन्धं परैः=परमतिभिरनात्तगन्धम् । कल्पः=साध्वाचारस्तत्प्रति-पादको ग्रन्थोऽपि कल्पः । व्यवहारः प्रतीतार्थस्तत्प्रतिपादकग्रन्थोऽपि व्यवहारस्ताभ्यां सह वर्तते यः स[२] सकल्पव्यवहारस्तं ईडे=स्तुवे ॥३५॥

[मू०] षट्सप्तपङ्क्तिविंशति-
षट्गुणसप्तप्रकारकल्पानाम् ।
विस्तारयिता कल्पित
फलदः स्तात् पञ्चकल्पो नः ॥३६॥ (आर्या)

(अव०) षट्० षट् सप्त पङ्क्तिर्दश विंशतिः षड्गुणद्विसप्त=द्विचत्वारिंशत्प्रकारा ये कल्पास्तेषाम् । विस्तारयिता पञ्चकल्पो नोऽस्माकं कल्पितफलदो=वाञ्छितफलदः[१] स्तात् ॥३६॥

[मू०] लेभे यद्व्यवहारेणाधुनान्त्येनापि[१] मुख्यताम् ।
तं जीतकल्पमाकल्पकल्पं[२] तीर्थश्रियः श्रये[३] ॥३७॥ (आर्या)

(अव०) लेभे० अन्त्येनापि यद्व्यवहारेण=यदाचारेण[१] अधुना मुख्यतां लेभे । एतदाधारेणैव प्रायश्चित्तविधिप्रवृत्तेः । तं जीतकल्पं तीर्थश्रियः=शासनरमाया आकल्पकल्पं= वेषतुल्यं श्रये । व्यवहाराः पञ्च आगमः, श्रुतम्, आज्ञा, धारणा, जीतं चेति सन्ति । यदुक्तं व्यवहारे[१]—

आगममाईओ जओ ववहारो पंचहा विणिद्दिट्ठो ।
आगमसुअआणा[१]धारणा य जीए अ पंचमए ।

एवं जीतव्यवहारोऽन्त्यः[२] ॥३७॥

[मू०] अञ्चामि पञ्चघ्ननवप्रमाणा-
चामाम्लसाध्यं कुमतैरबाध्यम् ।
महानिशीथं महिमौषधीनां
निशीथिनीशं शिववीथिभूतम् ॥३८॥ (उपजातिः)

---

१. व्यवहारसूत्रे - पंचविहे ववहारे पण्णत्ते तं जहा-आगमे सुए आणा धारणा जीए । (३.१०.२१.५) इयं गाथा पञ्चाशके दृश्यते ।

(अव०) अञ्चा० पञ्चघ्ननवभिः=पञ्चत्वारिंशत्प्रमाणैराचाम्लैः निर्यूढयोगं[१] साध्यं कुमतैरबाध्यम्। **महि०** महिमा एव औषधयस्तासाम्। **निशी०** चन्द्रं, वृद्धिप्रापकत्वात् । **शिव०** मोक्षमार्गभूतं महानिशीथं अञ्चामि=पूजयामि ॥३८॥

[मू०] निर्युक्तिभाष्यवार्तिक-
सङ्ग्रहणी[१]चूर्णिटिप्पनकटीकाः ।
सर्वेषामप्येषां
चेतसि निवसन्तु[२] नः सततम् ॥३९॥ (आर्या)

(अव०) निर्यु० निर्युक्तिः=सूत्रोक्तार्थभेदप्ररूपिका, भाष्यं=सूत्रोक्तार्थप्रपञ्चकं, वार्तिकं=उक्तानुक्तदुरूक्तार्थानां चिन्ताकारि, सङ्ग्रहणी=सूत्रोक्तार्थ[१]सङ्ग्राहिका, चूर्णिः=अवचूर्णिः, टिप्पनकं= विषमपदव्याख्या, टीका=निरन्तरव्याख्या एताः । एषां सर्वेषामपि पूर्वोक्तग्रन्थानाम्, नश्चेतसि सततं निवसन्तु ॥३९॥

[मू०] परिकर्म-सूत्र-पूर्वानुयोग-
पूर्वगत-चूलिकाभेदम् ।
ध्यायामि दृष्टिवादं कालिक-
मुत्कालिकं श्रुतं चान्यत् ॥४०॥ (आर्या)

(अव०) परि० परिकर्मः सप्रभेदः । सूत्राणि द्वाविंशतिभेदानि। पूर्वानुयोगो द्विधा प्रथमानुयोगः कालानुयोगश्च । प्रथमे २४ (चतुर्विंशति) जिन १२ (द्वादश) चक्रिदशाचरित्राणि, कालानुयोगेऽष्टाङ्गनिमित्तम् । पूर्वाणि सर्वाङ्गेभ्योऽर्थतो जिनैः शब्दतो गणधरैश्च पूर्वं रचितत्वात् पूर्वाणि[१] चतुर्दशापि पूर्वगतम् । चूलिका उक्तशेषवाच्याः । एते पञ्चभेदा यस्य तं दृष्टयो=दर्शनानि तासां वदनं दृष्टिवादस्तं ध्यायामि[२] । च=पुनरन्यत्

कालिकमागाढयोगाराध्यं उत्कालिकमनागाढयोगसाध्यं ध्यायामि । श्रुतं हि द्विधा अङ्गप्रविष्टमनङ्गप्रविष्टं च । तत्र

पायदुगं २ जंघोरू ६ गायदुगद्धं ८ च दो अ बाहू अ १० ।
गीवा ११ सिरं १२ च पुरिसो बारसअंगो सुअविसुद्धो ॥

गात्रद्विकार्द्धं=पृष्ठोदररूपम्, एवंविधश्रुतपुरुषस्य अङ्गेषु व्यवस्थितं अङ्गप्रविष्टम् । तथाहि—प्रवचनपुरुषस्य पादयुग्मं आचाराङ्गसूत्रकृताङ्गे[3] जङ्घे स्थानाङ्गसमवायाङ्गे इत्यादि । अथवा

गणहरकयमंगगयं[4] जं कय[5] थेरेहिं बाहिरं तं तु ।
निअयं अंगपविट्ठं अणिअय सुअबाहिरं भणिअं ॥

[मू०] यस्याभवन्त्यवितथा
अद्याप्येकोनषोडशादेशाः ।
सा भगवती प्रसीदतु
ममाङ्गविद्याऽनवद्यविधि[1]साध्या ॥४१॥ (आर्या)

(अव०) यस्या० यस्या अद्यापि एकोनषोडशाः=पञ्चदश आदेशाः स्वप्नादिषु अतीतानागतवर्तमानकथनानि अवितथाः=सत्याः भवन्ति । सा अङ्गविद्या भगवती अनवद्यविधिसाध्या मम प्रसीदतु ॥४१॥

[मू०] वन्दे विशेषणवतीं सम्मतिनयचक्रवालतत्त्वार्थान् ।
ज्योतिष्करण्ड-सिद्धप्राभृत-वसुदेवहिण्डीश्च ॥४२॥ (आर्या)

(अव०) वन्दे० विशेषणवतीं सम्मति-नयचक्रवाल-तत्त्वार्थान् । ज्योतिष्करण्ड-सिद्धप्राभृतवसुदेवहिण्डीश्च[1] एतान् ग्रन्थान् अहं वन्दे ॥४२॥

[मू०] कर्मप्रकृतिप्रमुखाण्य-
पराण्यपि पूर्वसूरिरचितानि ।

समयसुधाम्बुधिपृषतान्
परिचिनुमः प्रकरणानि चिरम् ॥४३॥ (आर्या)

(अव०) कर्म० कर्मस्वरूपप्रतिपादको ग्रन्थः कर्मप्रकृतिः । तत्प्रमुखानि अपराण्यपि अनुक्तानि पूर्वसूरिरचितानि प्रकरणानि चिरं परिचिनुमः सुपरिचितानि कुर्मः **सम०** सिद्धान्तोदधिबिन्दुप्रायाणि ॥४३॥

[मू०] व्याकरणछन्दोऽलङ्कृति-
नाटक-काव्य-तर्क-गणितादि ।
सम्यग्दृष्टिपरिग्रह-
पूतं जयति श्रुतज्ञानम् ॥४४॥ (आर्या)

(अव०) = **व्याक०** व्याकरण-छन्दोऽलङ्कृति-नाटक-काव्य-तर्क-गणितादि मिथ्यादृग्भिः कृतमपि[१] सम्यग्दृष्टयो=जैनास्तैः[२] परिग्रहः=स्वीकृतिस्तया पूतं श्रुतज्ञानं[३] जयति ॥४४॥

[मू०] सर्वश्रुताभ्यन्तरगां कृतैन-
स्तिरस्कृतिं पञ्चनमस्कृतिं च ।
तीर्थप्रवृत्तेः प्रथमं निमित्त-
माचार्यमन्त्रं च नमस्करोमि ॥४५॥ (उपजातिः)

(अव०) = **सर्व०** कृतपापतिरस्कारां **सर्व०** सर्वसिद्धान्त-मध्यगां[१] पञ्चनमस्कृतिं= पञ्चनमस्कारम् । **तीर्थ०** शासनप्रवृत्तेः प्रथमं निमित्तं आचार्यमन्त्रं च नमस्करोमि[२] ॥४५॥

[मू०] इति भगवतः सिद्धान्तस्य प्रसिद्धफलप्रथां,
गुणगणकथां कण्ठे कुर्याज्जिनप्रभवस्य यः ।

वितरतितरां तस्मै तोषाद्वरं[१] श्रुतदेवता,
स्पृहयति च सा मुक्तिश्रीस्तत्समागमनोत्सवम् ॥४६॥
(हरिणी ।)

(अव०) इति० इति=अमुना प्रकारेण भगवतः सिद्धान्तस्य जिनप्रभवस्य= जिनप्रणीतस्य, यः=**पुरुषो गुण०** गुणा=देवेन्द्रोपपाताध्ययनपठनेन देवेन्द्र एति, उत्थानश्रुतेन सङ्घादिकार्ये ग्राम उद्वास्यते, समुत्थानश्रुतेन[१] पुनर्वास्यते, ईदृशमाहात्म्यादयस्तेषां गणः=समूहस्तस्य कथा=जल्पनम्। एतत्स्तवरूपां कण्ठे कुर्यात्=पठति। कथम्भूतां ? **प्रसिद्ध०** प्रसिद्धाः=सर्वविद्भिर्ज्ञाताः फलानां=यथा कुत्रचिन्नगरे बहुपद्मपरिवृतं महापुण्डरीकं देवताधिष्ठितं सरस्यास्ते । तच्च केनापि ग्रहीतुं न शक्यते । राज्ञोक्तं–'एतदानयति तद्धर्ममहं प्रतिपद्ये' इति । तदा परतीर्थिकैरुपक्रमेणाप्यादानाशक्तैर्मन्त्रिणा जैनर्षिराकारितः तेन च सचितजलास्पर्शिना त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य पालिस्थैनैव '**उप्पाहि[२] पुण्डरीआ**' इत्यादि पुण्डरीकाध्ययनं पेठे । ततस्तत्पुण्डरीकमुत्प्लुत्य[३] राज्ञोऽङ्के पपात । तदनु सपरिकरो राजा जैनोऽजनि । इत्यादीनां प्रथा=विस्तारो यस्यास्तां प्रसिद्धफलप्रथाम् । तस्मै तोषात् श्रुतदेवता वरं वितरति=दत्ते। सा मुक्तिश्रीस्तत्समागमनोत्सवं स्पृहयति । अत्र पूर्वार्द्धे जिनप्रभवस्येति सिद्धान्तविशेषणेन कविरौद्धत्यपरिहाराय गुप्तं **जिनप्रभेति** स्वनामाभिहितवान् इति ॥४६॥

आदिगुप्ताभिधानस्य गुरोः पादप्रसादतः ।
पदविच्छेदरूपेयं विवृतिर्लिखिता मिता ॥

टी० A प्रत पुष्पिकाः मूल–इतिश्री सिद्धान्तस्तवनं समाप्तं । संवत् १५१४ वर्षे फा० शु० १५ दिने चम्पावती नगर्यां तपागच्छाधिराजश्रीश्रीश्रीसोमसुन्दरसूरि–शिष्याधिराजश्रीविशालराजसूरिशिष्य–शिरोरत्नपूज्य पं० मेरूरत्नगणिशिष्येणाऽलेखि ॥

अवचूरिः– इति भट्टारकप्रभुश्रीविशालराजसूरिशिष्य पं० सोमोदयगणिकृता श्रीसिद्धान्तस्तवावचूर्णिः संवत् १५१४ वर्षे चैत्रवदि १ दिने श्रीगुरू पं० श्री श्रीश्रीमेरूरत्नगणिशिष्यभुजिष्य सिद्धान्तसुन्दरेणाऽलेखि ॥ छ ॥

'B' प्रत पुष्पिकाः अव० इतिश्री सिद्धान्तस्तवावचूरिः ॥ ग्रंथाग्रं २२५ ॥ छ ॥

'C' प्रत पुष्पिकाः मूल० संवत् १५१८ वर्षे १६३ दिने भट्टारक प्रभु
श्री श्री श्री सोमदेवसूरि पादशिष्येण लेखि परोपकाराय ।
अव० इति श्री सिद्धान्तस्तवावचूर्णिः ॥ छ ॥

'D' प्रत पुष्पिकाः अव० इतिश्री सिद्धान्तस्तवचूर्णिः ॥ छ ॥

• • •

परिशिष्ट-१ मूलम्

सिद्धान्तस्तवः

नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै सुधर्मणे च श्रुतभक्तिनुन्नः ।
निरुद्धनानावृजिनागमानां जिनागमानां स्तवनं तनोमि ॥१॥

सामायिकादिक-षडध्ययन-स्वरूपमावश्यकं शिवरमावदनात्मदर्शम् ।
निर्युक्ति-भाष्य-वर-चूर्णि-विचित्रवृत्ति-स्पष्टीकृतार्थनिवहं हृदये वहामि ॥२॥

युक्तिमुक्तास्वातिनीरं प्रमेयोर्मिमहोदधिम् ।
विशेषावश्यकं स्तौमि महाभाष्यापराह्वयम् ॥३॥

दशवैकालिकं मेरुमिव रोचिष्णुचूलिकम् ।
प्रीतिक्षेत्रं सुमनसां सत्कल्याणमयं स्तुमः ॥४॥

उद्यामुपोद्धातविकल्पकालभेदप्रभेदप्रतिभेदरूपाम् ।
मिताभिधानाममिताभिधेयां स्तौम्योघनिर्युक्तिममोघयुक्तिम् ॥५॥

पिण्डविधिप्रतिपत्तावखण्डपाण्डित्यदानदुर्ललिताम् ।
ललितपदश्रुतिमृष्टामभिष्टुमः पिण्डनिर्युक्तिम् ॥६॥

प्रवचननाटकनान्दीप्रपञ्चितज्ञानपञ्चकसतत्त्वा ।
अस्माकममन्दतमं कन्दलयतु नन्दिरानन्दम् ॥७॥

अनुयोगद्वाराणि द्वाराणीवापुनर्भवपुरस्य ।
जीयासुः श्रुतसौधाधिरोहसोपानरूपाणि ॥८॥

अनवमनवमरससुधाह्लादिनीं षट्त्रिंशदुत्तराध्ययनीम् ।
अञ्चामि पञ्चचत्वारिंशतमृषिभाषितानि तथा ॥९॥

उच्चैस्तरोदञ्चितपञ्चचूडमाचारमाचारविचारचारु ।
महापरिज्ञास्थनभोगविद्यमाद्यं प्रपद्येऽङ्गमनङ्गजैत्रम् ॥१०॥

त्रिषष्ठिसंयुक्तशतत्रयीमितप्रवादिदर्पाद्रिविभेदह्लादिनीं ।
द्वयश्रुतस्कन्धमयं शिवश्रिये कृतस्पृहः सूत्रकृतं गमाद्रिये ॥११॥

स्थानाङ्गाय दशस्थानस्थापिताखिलवस्तुने ।
नमामि कामितफलप्रदानसुरशाखिने ॥१२॥

तत्तत्सङ्ख्याविशिष्टार्थप्ररूपणपरायणम् ।
संस्तुमः समवायाङ्गं समवायैः स्तुतं सताम् ॥१३॥

या षट्त्रिंशत्सहस्रान् प्रतिविधिसजुषां बिभ्रती प्रश्नवाचं,
चत्वारिंशच्छतेषु प्रथयति परितः श्रेणिमुद्देशकानाम् ।
रङ्गद्भङ्गोत्तरङ्गा नयगमगहना दुर्विगाहा विवाह-
प्रज्ञप्तिः पञ्चमाङ्गं जयति भगवती सा विचित्रार्थकोशः ॥१४॥

कथानकानां यत्रार्द्धचतस्रः कोटयः स्थिताः ।
सोत्क्षिप्तादिज्ञातहृद्या ज्ञातधर्मकथा श्रिये ॥१५॥

आनन्दादिश्रमणोपासकदशकेतिवृत्तसुभगार्थाः ।
विशदामुपासकदशा भावद्दशं मम दिशन्तु सदा ॥१६॥

महत्र्रृषिमहासतीनां गौतमपद्मावतीपुरोगाणाम् ।
अधिकृतशिवान्तसुकृताः स्मरतौच्चैरन्तकृद्दशाः कृतिनः ॥१७॥

गुणैर्यदध्ययनकलापकीर्तिता अनुत्तराः प्रशमिषु जालिमुख्यकाः ।
अनुत्तरश्रियमभजन्ननुत्तरोपपातिकोपपददशाः श्रयामि ताः ॥१८॥

अङ्गुष्ठाद्यवतरदिष्टदेवतानां, विद्यानां भवनमुदात्तवैभवानाम् ।
निर्णीतास्रवविधिसंवरस्वरूपाः, प्रश्नव्याकरणदशा दिशन्तु शं नः ॥१९॥

ज्ञातैर्मृगापुत्रसुबाहुवादिभिः शासद्विपाकं सुखदुःखकर्मणाम् ।
द्विःपङ्क्तिसङ्ख्याध्ययनोपशोभितं श्रीमद्विपाकश्रुतमस्तु नः श्रिये ॥२०॥

प्रणिधाय यत्प्रवृत्ता शास्त्रान्तरवर्णनातिदेशततिः ।
नमतौपपातिकं तत्प्रकटयदुपपातवैचित्रीम् ॥२१॥

सूर्याभवैभवं विभावनद्दष्टतीर्थप्रश्नादनन्तरमिनाननिर्गतेन ।
केशिप्रदेशिचरितेन विराजि राज-प्रश्नीयमिद्धमुपपत्तिशतैर्महामि ॥२२॥

जीवाजीवनिरूपि द्वेधा प्रतिपत्तिनवककमनीयम् ।
जीवाभिगमाध्ययनं ध्यायेमासुगमगमगहनम् ॥२३॥

षट्त्रिंशता पदैर्जीवाजीवभवविभावनीम् ।
प्रज्ञापनां पनायामि श्यामार्यस्याऽमलं यशः ॥२४॥

विवृताद्यद्वीपस्थितिजिनजनिमहचक्रिदिग्विजयविधये ।
भगवति जम्बूदीपप्रज्ञप्ते ! तुभ्यमस्तु नमः ॥२५॥

प्रणमामि चन्द्रसूर्यप्रज्ञप्ती यमलजातिके नव्ये ।
गुम्फवपुषैव नवरं नातिभिदाऽर्थात्मनापि ययोः ॥२६॥

कालादिकुमाराणां महाहवारम्भसम्भृतैर्दुरितैः ।
दर्शितनरकातिथ्या निरयावलिका विजेषीरन् ॥२७॥

पद्मादयः कल्पवतंसभूयमुपेयिवासः सुकृतैः शमीशाः ।
यत्रोदिताः श्रेणिकराजवंश्या उपास्महे कल्पवतंसिकास्ताः ॥२८॥

चन्द्रसूर्यबहुपुत्रिकादिभिर्यत्र संयमविराधनाफलम् ।
भुज्यमानमगृणाद् गणाधिपः पुष्पिताः शमभिपुष्पयन्तु ताः ॥२९॥

श्रीह्रीप्रभृतिदेवीनां चरित्रं यत्र सूत्रितम् ।
ताः सन्तु मे प्रसादानुकूलिकाः पुष्पचूलिकाः ॥३०॥

वृष्णीनां निषधादीनां द्वादशानां यशःस्त्रजः ।
पुष्णन्तु भक्तिनिष्णानां दशां वृष्णिदशाः शुभाम् ॥३१॥

वन्दे मरणसमाधिं प्रत्याख्याने महातुरोपपदे ।
संस्तारचन्द्रवेध्यकभक्तपरिज्ञाचतुःशरणम् ॥३२॥

वीरस्तवदेवेन्द्रस्तवगच्छाचारमपि च गणिविद्या ।
द्वीपाब्धिप्रज्ञप्तिं तन्दुलवैचारिकं च नुमः ॥३३॥

शिवाध्वदीपायोद्घातानुद्घातारोपणात्मने ।
चित्रोत्सर्गापवादाय निशीथाय नमो नमः ॥३४॥

निर्युक्तिभाष्यप्रमुखैर्निबन्धैः सहस्त्रशाखीकृतवाच्यजातम् ।
दशाश्रुतस्कन्धमनात्तगन्धं परैः सकल्पव्यवहारमीडे ॥३५॥

षट्-सप्त-पङ्क्ति-विंशति-षट्गुणसप्त-प्रकारकल्पानाम् ।
विस्तारयिता कल्पितफलदः स्तात् पञ्चकल्पो नः ॥३६॥

लेभे यद्व्यवहारेणाधुनान्त्येनापि मुख्यता ।
तं जीतकल्पमाकल्पकल्पं तीर्थश्रियः श्रये ॥३७॥

अञ्चामि पञ्चघ्ननवप्रमाणाचामाम्लसाध्यं कुमतैरबाध्यम् ।
महानिशीथं महिमौषधीनां निशीथिनीशं शिववीथिभूतम् ॥३८॥

निर्युक्तिभाष्यवार्तिकसङ्ग्रहणीचूर्णिटिप्पनकटीकाः ।
सर्वेषामप्येषां चेतसि निवसन्तु नः सततम् ॥३९॥

परिकर्मसूत्रपूर्वानुयोगपूर्वगतचूलिकाभेदम् ।
ध्यायामि दृष्टिवादं कालिकमुत्कालिकं श्रुतं चान्यत् ॥४०॥

यस्या भवन्त्यवितथा अद्याप्येकोनषोडशादेशाः ।
सा भगवती प्रसीदतु ममाङ्गविद्याऽनवद्यविधिसाध्या ॥४१॥

वन्दे विशेषणवतीं सम्मतिनयचक्रवालतत्त्वार्थान् ।
ज्योतिष्करण्ड-सिद्धप्राभृत-वसुदेवहिण्डीश्च ॥४२॥

कर्मप्रकृतिप्रमुखाण्यपराण्यपि पूर्वसूरिरचितानि ।
समयसुधाम्बुधिपृषतान् परिचिनुमः प्रकरणानि चिरम् ॥४३॥

व्याकरणछन्दोऽलङ्कृति-नाटक-काव्य-तर्क-गणितादि ।
सम्यग्दृष्टिपरिग्रहपूतं जयति श्रुतज्ञानम् ॥४४॥

सर्वश्रुताभ्यन्तरगां कृतैनस्तिरस्कृतिं पञ्चनमस्कृतिं च ।
तीर्थप्रवृत्तेः प्रथमं निमित्तमाचार्यमन्त्रं च नमस्करोमि ॥४५॥

इति भगवतः सिद्धान्तस्य प्रसिद्धफलप्रथां,
गुणगणकथां कण्ठे कुर्याज्जिनप्रभवस्य यः ।
वितरतितरां तस्मै तोषाद्वरं श्रुतदेवता,
स्पृहयति च सा मुक्तिश्रीस्तत्समागमनोत्सवम् ॥४६॥

• • •

परिशिष्ट–२

श्लोकानुक्रमणिका

श्लोकः	श्लोकाङ्कः
अङ्गुष्ठाद्यवतरदिष्टदेवतानां विद्यानां....	१९
अञ्चामि पञ्चघ्ननवप्रमाणाचामाम्लसाध्यं....	३८
अनुयोगद्वाराणि....	८
अनवमनवमरससुधाह्लादिनीं....	९
आनन्दादिश्रमणोपासक....	१६
इति भगवतः सिद्धान्तस्य....	४६
उच्चैस्तरोदञ्चितपञ्चचूडमाचारमाचार....	१०
उद्यामुपोद्धातविकल्पकाल....	५
कथानकानां यत्रार्द्धचतस्रः....	१५
कर्मप्रकृतिप्रमुखाण्यपराण्यपि....	४३
कालादिकुमाराणां....	२७
गुणैर्यदध्ययनकलापकीर्तिता....	१८
चन्द्रसूर्यबहुपुत्रिकादिभिर्यत्र....	२९
जीवाजीवनिरूपि द्वेधा....	२३
ज्ञातैर्मृगापुत्रसुबाहुवादिभिः शासद्विपाकं....	२०
तत्तत्सङ्ख्याविशिष्टार्थप्ररूपण....	१३
त्रिषष्ठिसंयुक्तशतत्रयीमितप्रवादिदर्पाद्रि....	११
दशवैकालिकं....	४
नत्वा गुरुभ्यः श्रुतदेवतायै....	१
निर्युक्तिभाष्यप्रमुखैर्निबन्धैः....	३५
निर्युक्तिभाष्यवार्तिकसङ्ग्रहणी....	३९

पद्मादयः कल्पवतंसभूयमुपेयिवासः....	२८
परिकर्मसूत्रपूर्वानुयोग....	४०
पिण्डविधिप्रतिपत्तावखण्डपाण्डित्य....	६
प्रणिधाय यत्प्रवृत्ता....	२१
प्रणमामि चन्द्रसूर्यप्रज्ञप्ती....	२६
प्रवचननाटकनान्दीप्रपञ्चित....	७
महऋषिमहासतीनां....	१७
यस्या भवन्त्यवितथा....	४१
या षट्त्रिंशत्सहस्त्रान् प्रतिविधिसजुषां....	१४
युक्तिमुक्तास्वातिनीरं....	३
लेभे यद्व्यवहारेणा....	३७
वन्दे मरणसमाधिं....	३२
वन्दे विशेषणवतीं....	४२
विवृताद्यद्वीपस्थिति....	२५
वीरस्तवदेवेन्द्रस्तवगच्छाचारमपि....	३३
वृष्णीनां निषधादीनां....	३१
व्याकरणछन्दोऽलङ्कृति-नाटक....	४४
शिवाध्वदीपायोद्घातनुद्घातारोपणात्मने....	३४
श्रीह्रीप्रभृतिदेवीनां चरित्रं....	३०
षट्त्रिंशता पदैर्जीवाजीव....	२४
षट्सप्तपङ्क्तिविंशतिषट्गुण....	३६
सर्वश्रुताभ्यन्तरगां कृतैनस्तिरस्कृतिं....	४५
सामायिकादिक-षडध्ययन....	२
सूर्याभवैभवं विभावनदृष्टतीर्थ-....	२२
स्थानाङ्गाय दशस्थानस्थापिता....	१२

परिशिष्ट-३

उद्धरणस्थलसङ्केतः

श्लोकः	श्लोक क्रमाङ्कः	स्थानम्
आगममाइओ	३७	व्यवहार, (पञ्चाशक ७७०)
इवर्णादे	२०	सिद्धहेम. १।२।२१
इह खलु.	४	दशवैकालिक चूलिका-१
उद्देसे निद्देसे	५	आवश्यकनिर्युक्ति १४०
उप्पाहि पुंडरिआ	४६	
कहण्णं भंते जीवा सुहकम्मं	१२	स्थानांग (?)
गणहरकयं	४०	नन्दीसूत्र हारि. वृत्ति ७९
चत्तारि सूरा पण्णत्ता	१२	स्थानांग ४-३१७
चुलिअं तु	४	दशवैकालिक चूलिका २
तओ इंदा पण्णत्ता	१२	स्थानांग ३-१(१२७)
दव्वे अद्ध	५	आवश्यकनिर्युक्ति-६६०
नवहिं ठाणेहिं रोगुप्पत्ति	१२	स्थानांग ९-६६७
पंचहिं ठाणेहिं जीवा दुल्लहबोहि	१२	स्थानांग ५-२-४२६
पंचहिं अचित्तवाउकाइआ	१२	स्थानांग ५-३-४४४
पायदुगं जंघोरु	४०	नन्दीसूत्र हारि. वृत्ति ७९
विवक्षातः कारकाणि	१२	न्यायसङ्ग्रहः ११
सोहम्मीसाण	२८	नन्दीसूत्र हारि. वृत्ति ८४

• • •

परिशिष्ट-४

सर्वसिद्धान्तस्तवः (पाठान्तर)

का.स्थ.	टि. A प्रत	B प्रत	C प्रत	D प्रत
१ मू.	१ नुन्नः	तनुः		
१ प्रस्ता.	१ देवी	इति नास्ति ।		
१ प्रस्ता.	२ उपदीकृता	उपपदीकृता		
१ प्रस्ता.	३ निजनामांकिता	इति नास्ति ।		
१ अव.	१	'श्रुत' इत्यधिकम् ।		
१ अव.	२	'इति सूत्रेण सम्प्रदान चतुर्थी' इत्यधिकम् ।		
१ अव.	३ प्रसरणानि	प्रसारणानि		
१ अव.	४		तनोमि इत्यधिकम् ।	
२ अव.	१ सामायिकादिकानि	सामायिकादिकानि		
२ अव.	२ यानि षडध्ययनानि	इति नास्ति । तत्स्वरूपं शिवरमाया		
२ अव.	३ प्रपञ्चनं वरा चूर्णिः	प्रपञ्चतपरावचूर्णिः		
२ अव.	४ वृत्तिः	इति नास्ति ।		
२ अव.	५ अर्थनिवहा	अर्थकथनंवहा		
३ अव.	१ निष्पादकत्वात्	निष्पादितत्वात्		
३ अव.	२ एवोर्मयः	एवकर्मयः		
४ अव.	१	'देवानां' इत्यधिकम् ।		
५ मू.	१ स्तौम्योघनिर्युक्ति	नौम्योघनिर्युक्ति	नौम्योघनिर्युक्ति	
५ अव.	१ ओघनिर्युक्तिं स्तौमि	इति नास्ति ।		
५ अव.	२ खित्तकाल	इति नास्ति ।		
५ अव.	३ षष्ठस्य	षष्ठा		
५ अव.	४ कालश्च	कालस्यश्च		
५ अव.	५ रूपा ओघसामाचारी	इति नास्ति ।		
५ अव.	६ आचाराभिधवस्तुनो	आचाराधिभवस्तुनो	आचाराभि-धानवस्तुनो	
५ अव.	७ प्राभृतान्निर्युढा	प्राभृतकान्निर्युढा		
६ मू.	१ मृष्टा	मिष्टा	मिष्टा	
६. अव.	१ विशुद्धि		विशुद्धा	
६. अव.	२ मृष्टाः		मिष्टाः	
७ मू.	१ कन्दलयतु	कन्दलयितु		
९ अव.	१ शान्ताख्यः	इति नास्ति ।		
९ अव.	२ पूजयामि	इति नास्ति ।		

का.स्थ.	टि. A प्रत	B प्रत	C प्रत	D प्रत
९ अव.	३ नारदादिभिः		नारदाभिः	
१० अव.	१ प्रपद्ये		प्रतिपद्ये	
११ अव.	१ श्रुतस्कन्धमयं	इति नास्ति ।		
११ अव.	२		यदुक्तं असीससयं इत्यादि नास्ति ।	
१२ मू.	१ नमामि	ममापि		
१२ अव.	१ जुद्धसुरे	युद्धसुरे		
१२ अव.	२ सरिराणुमए	सरिराणु		
१२ अव.	३ संघस्स	इति नास्ति ।		
१२ अव.	४		देवाणं इत्यधिकम् ।	
१२ अव.	५ पडिकुलणयाए		पडिकुलणाए	
१२ अव.	६ साहू	इति नास्ति ।		
१२ अव.	७ इच्चेइहिं		इच्चेइ एहिं	
१२ अव.	५ स्थानाङ्गाय			
	अहं नमामि ।	इति नास्ति ।		
	विवक्षातः			
		इति न्यायात्		
१३ अव.	१ समवायाङ्गं	समवायं		
१४ अव.	१	'रङ्गन्तो ये तरङ्गाः रचनाविशेषाः ते रङ्गतरङ्गा उ कल्लोला इत्यधिकम् ।		
१४ अव.	२	'इति' इत्यधिकम् ।	इति इत्यधिकम्	
१४ अव.	३ पूजाभिधानम्	पूज्याभिधानम्		
१६ मू.	१ सुभगार्थाः	सुभगार्थो		
१७ मू.	१ गौतमपद्मावती	गोतपद्मावती		
१७ अव.	१ कृतिन	सुकृतिन		
१८ अव.	१ जालिमुख्याः ।			
	जालिमुख्या		इति नास्ति ।	
१८ अव.	२ अनुत्तराणि	अनुत्तरादिभि		
१९ मू.	१ अवतरदिष्ट		अवरतदिष्ट	
१९ अव.	१ अवतरो	अवतारो		
२० मू.	१ ज्ञातैर्मृगा	ज्ञातैमृगा		
२० अव.	१ केषां		तेषां	

का.स्थ.	टि. A प्रत	B प्रत	C प्रत	D प्रत
२० अव.	२ इत्यत्र	इत्यर्थत्र		
२० अव.	३		परमते इत्यधिकम् ।	
२० अव.	४ सर्वगणधर		पूर्वगणधर	
२० अव.	५ एतद्वाचनाग्रहणात्	एतद्वाग्रहणात्		
२१ मू.	१ प्रणिधाय यत्प्रवृत्ता	प्रणिधायवत् प्रवृत्ता		
२१ अव.	१ ततिः	ततः		
२१ अव.	२ अतिदेशो अन्यत्र	अतिदेशान्य अन्यत्र		
२१ अव.	३ देवनरनारकाणाम्		देवनरकाणाम्	
२१ अव.	४ शस्त्रपरिज्ञाध्ययन	शस्त्रपरिज्ञाताध्ययन		
२१ अव.	५ भवइ	हवइ		
२१ अव.	६ तत्र	तदत्र	तदत्र	
२२ अव.	१ द्दष्टं	इति नास्ति ।		
२२ अव.	२ सङ्घो	सङ्घ		
२२ अव.	३ देवस्य		देवेभ्यः	
२२ अव.	४ किमित्ययमुत्कृष्ट	किमित्युत्कृष्ट		
२३ मू.	१ नवक			कान्ति
२३ मू.	२ सुगमगमगहनं			सुगमगहनं
२३ अव.	१ युक्तयस्तासां	अधिकारास्तासां	अधिकारास्तासां	
२३ अव.	२ नवकं तेन	नवकेन	नवकेन	नवकेन
२३ अव.	३ अभिगमो	अभिमो		
२४ मू.	१ भव		भाव	भाव
२४ अव.	१ पनायामि	यामि		
२५ मू.	१ तुभ्यमस्तु नमः	तुभ्यमस्तुमः		
२५ अव.	१ पञ्चमोपाङ्गं	पञ्चमाङ्गोपाङ्गं		
२५ अव.	२ जन्ममहः		जन्महः	
२६ मू.	१ यमलजाति	यमलयात		यमलजात
२६ मू.	२ आत्मनापि	आत्मनोपि		
२६ अव.	१ गुम्फवपुषैव	गुम्फवपुषैर्गुम्फेनैव		
२७ मू.	१ विजेषीरन्			जेषीरन्
२७ अव.	१ वैरे			इति नास्ति ।
२७ अव.	२ दुरितैः	इति नास्ति ।		
२७ अव.	३ प्राप्तिर्याभिस्ता			प्राप्तिर्यकाभिस्ता
२८ मू.	१ पद्मादयः			पद्मावतं
२८ अव.	१ देवत्वं	इति नास्ति ।		
२८ अव.	२ कथिताः		उक्ताः	उक्ताः
२८ अव.	३ सोहम्मीसाणकप्प	सोहम्मीण कप्पे जाणि		
२९ मू.	१ अगृणाद् गणाधिपः	अगृणाधिपः		

का.स्थ.	टि. A प्रत	B प्रत	C प्रत	D प्रत
२९ अव.	१ बहुपुत्रिकाऽनपत्या	बहुपुत्रिकाऽपनत्या		
३० मू.	१ सूत्रितं		कीर्तितं	
३० अव.	१ मे=मम	इति नास्ति ।		
३१ मू.	१ शुभाम् ।	शुभम् ।		
३१ अव.	१अन्धकवृष्णिगोत्रजा	अन्धकवृष्णिदशा भक्तिपरायणाना नां द्वादशानां यशःस्त्रजो यशोमाला इव		
३३ अव.	१ तन्दुलवैचारिकं	तन्दुलवैतालिकं		
३४ मू.	१ नमो नमः ।	नामा नस ।		
३४ अव.	१ उद्घाताऽनुद्घा-तारोपणात्मने	उद्घातात्मने		
३४ अव.	२	'जीवाजीवभाव प्ररूपिकं प्रज्ञापनां समवायाङ्गोपाङ्गं यामि स्तौमि शामार्यस्य कालिकाचार्यस्य अमलयशस्तत्र तदधिकारात्' इत्यधिकम् ।		
३४ अव.	३ अपवादः कारणे	अपवादेः करणे		
३४ अव.	४ आचाराङ्गपञ्चम-चूडायै नमो नमः वीप्सायां द्वित्वम्	इति नास्ति ।		
३५ अव.	१		ग्रन्थे इत्यधिकम् ।	
३५ अव.	२ सह वर्तते यः स		इति नास्ति ।	
३६ अव.	१ फलदः	फलः		फलप्रद
३७ मू.	१ धुनान्त्येनापि	धुनान्तेनापि		
३७ मू.	२ कल्पकल्पं			कल्पमल्पं
३७ मू.	३ श्रये		श्रिये	
३७ अव.	१ यदाचारेण			जीतनाम्ना
३७ अव.	२ आणा	इति नास्ति ।		
३७ अव.	३ जीतव्यवहारोऽन्यः	जीतव्यवहारोऽन्यः ।		
३८ अव.	१		निर्युढं योगं	निर्युढं योगं

का.स्थ.	टि. A प्रत	B प्रत	C प्रत	D प्रत
			इत्यधिकम् ।	इत्यधिकम् ।
३९ मू.	१ सङ्ग्रहणी			सङ्ग्रही
३९ मू.	२ निवसन्तु			नवसन्तु
३९ अव.	१ सूत्रोक्तार्थ	सूत्रार्थ		
३९ अव.	२ अपि	इति नास्ति ।		
४० अव.	१ पूर्वाणि	पूर्वाङ्गेभ्योऽर्थतो		
४० अव.	२ ध्यायामि ।	ध्यायातामि ।		
४० अव.	३ सूत्रकृताङ्गे	इति नास्ति ।		
४० अव.	४ इत्यादि अथवा गणहरकयमंगगयं	इति नास्ति ।		
४० अव.	५ जं कय	जं कथ्य		
४१ मू.	१ विधि			हृदि
४२ अव.	१ वन्दे. विशेषणवर्ती सम्मति नयचक्रवाल तत्त्वार्थान् । ज्योतिष्करण्डसिद्ध-प्राभृत वसुदेवहिण्डीश्च	इति नास्ति ।		
४४ अव.	१ कृतमपि	कृतमभिपि		
४४ अव.	२ सम्यगष्टयो	सम्यग् दैवौ द्दष्टयो देवाः तत्		
४४ अव.	३ श्रुतज्ञानं	ज्ञातं		
४५ अव.	१ मध्यगां	मध्यमगां		
४५ अव.	२ आचार्यमन्त्रं च नमस्करोमि	आचार्य नमस्करोति		
४६ मू.	१ तोषाद्वरं	तोषाद्वारं		
४६ अव.	१ श्रुतेन सङ्घादिकार्ये ग्राम उद्वास्यते समुत्थानश्रुतेन	इति नास्ति ।		
४६ अव.	२ उप्पाहि	उप्पाइ		
४६ अव.	३ पुण्डरीकमुत्प्लुत्य	पुण्डरीकतुल्लत्य		

• • •

परिशिष्ट–५

व्याख्याकोशः

शब्दः	व्याख्या	श्लोकः
अञ्चामि=	पूजयामि	९, ३८
अतिदेश=	अन्यत्र विस्तरेण प्ररूपितस्य वस्तुनः सङ्क्षेपेण कथनम्	२१
अधिकृत=	प्रकटित	१७
अनवरम=	रम्य	९
अनुत्तर=	प्रधान	१८
अपवाद=	कारणे प्रतिषिद्धसेवा	३४
अपुनर्भवपुर=	मोक्षनगर	८
आरोपण=	उचितस्थाने प्रयोजनम्	३४
आश्रवविधि=	कर्मपुद्गलादान	१९
इन=	श्रीवीर	२२
उत्सर्ग=	मुख्यमार्ग	३४
उदञ्चित=	प्रकटीकृत	१०
उद्धात=	गुरूप्रायश्चित्तविशेष	३४
उपपद=	पूर्वपद	१८
उपपात=	उत्पाद	२१
उपाङ्ग=	अङ्गस्योप=समीपे	२१
उपोद्घात=	शास्त्रस्यादि	५
ओघ=	सामान्य	५
कल्प=	साध्वाचार	३५
कल्पवतंस=	देवत्व	२८
चूर्णि=	अवचूर्णि	३९
जालि=	नमिऋषि	१८
जिनागम=	श्रीवीरसिद्धान्त	१
ज्ञात=	दृष्टान्त	१५
टिप्पनक=	विषमपदव्याख्या	३९
टीका=	निरन्तरव्याख्या	३९
तति=	श्रेणि	२१

नवमरस=	शान्तरस	९
नव्य=	भिन्न	२६
निशीथ=	मध्यरात्र	३४
पनायामि=	स्तौमि	२४
परिग्रह=	स्वीकृति	४४
पिण्ड=	आहार	६
प्रतिपत्ति=	युक्ति	२३
प्रतिविधि=	उत्तर	१४
प्रमेय=	पदार्थ	३
प्ररूपण=	कथन	१३
प्रवचन=	जिनमत	७
प्रशमि=	ऋषि	१८
भावदृक्=	ज्ञान	१६
भाष्य=	सूत्रार्थप्रपञ्चन	२
भाष्य=	सूत्रोक्तार्थप्रपञ्चक	३९
महाहवा=	महायुद्ध	२७
वार्तिक=	उक्तानुक्तदुरूक्तार्थानां चिन्ताकारि	३९
विधि=	दोषरहित्वेन विशुद्धि	६
विपाक=	परिणाम	२०
वृजिन=	पाप	१
वृत्ति=	अनुगतार्थकथन	२
वृष्णि=	अन्धकवृष्णिगोत्रज	३१
व्यवहार=	आचार	३७
श=	सुख	१९, २९
शमीश=	ऋषी	२८
श्यामार्य=	कालिकाचार्य	२४
श्रुतदेवता=	सरस्वती	१
श्रुति=	श्रवण	६
संवर=	आश्रवनिरोध	१९
सङ्ग्रहणी=	सूत्रोक्तार्थसङ्ग्राहिका	३९
सम्यग्दृष्टि=	जैन	४४
हादिनी=	वज्र	११

परिशिष्ट–६

सम्पादनोपयुक्तग्रन्थसूची

ग्रन्थ का नाम	सम्पादक	प्रकाशक
काव्यमाला भा–७		निर्णयसागर
जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास (जै.सा.सं.इ)	मोहनलाल दलीचंद देसाई	मो द. देसाई
जैनस्तोत्रसन्दोह		
ठाणांग समवायांग	मुनिश्री जम्बूविजयजी	महावीर जैन विद्यालय, मुंबई
नन्दीसूत्रम्	मुनिश्री पुण्यविजयजी	प्राकृत ग्रंथ परिषद्, अहमदाबाद
निर्युक्ति सङ्ग्रह	आ. श्री विजय–जिनेन्द्रसूरिजी	हर्षपुष्पामृत–ग्रन्थमाला, जामनगर
न्यायसङ्ग्रहः		हर्षचन्द्र भुराभाई
प्राकृतपद्यानामकारादि क्रमेण अनुक्रमणिका १–२	मुनिश्री विनयरक्षित वि.	शास्त्रसंदेशमाला, सुरत
संस्कृत पद्यानामकारादि क्रमेण अनुक्रमणिका १	मुनिश्री विनयरक्षित वि.	शास्त्रसंदेशमाला, सुरत
सिद्धहेमशब्दानुशासन	पं. बेचरदास दोशी	युनि. ग्रन्थ निर्माण बोर्ड, अहमदाबाद.

• • •

मुखपृष्ठ परिचय

प्रकृति के प्रसिद्ध पांच मूल तत्त्व है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। भारत का प्रत्येक दर्शन या धर्म इन पांच में से किसी एक तत्त्व को केंद्र में रखकर विकसित हुआ है। जैन धर्म का केंद्रवर्ती तत्त्व अग्नि है। अग्नि तत्त्व ऊर्ध्वगामी, विशोधक, लघु और प्रकाशक है।

श्रुतज्ञान अग्नि की तरह अज्ञान का विशोधक है और प्रकाशक है। अग्नि के इन दो गुणधर्मों को केंद्र में रखकर मुखपृष्ठ का पृष्ठभूमि (Theme) तैयार किया गया है।

कृष्ण वर्ण अज्ञान और अशुद्धिका प्रतीक है। अग्नि का तेज अशुद्धियों को भस्म करते हुए शुद्ध ज्ञान की और अग्रसर करता है। विशुद्धि की यह प्रक्रिया श्रुतभवन की केंद्रवर्ती संकल्पना (Core Value) है।

अग्नि प्राण है। अग्नि जीवन का प्रतीक है। जीवन की उत्पत्ति और निर्वाह अग्नि के कारण होता है। श्रुत के तेज से ही ज्ञानरूप कमल सदा विकसित रहता है और विश्व को सौंदर्य, शांति एवं सुगंध देता है। चित्र में सफेद वर्ण का कमल इसका प्रतीक है।

श्रुतभवन में अप्रगट, अशुद्ध और अस्पष्ट शास्त्रों का शुद्धिकरण होता है। शुद्धिकरण के फलस्वरूप श्रुत तेज के आलोक में ज्ञानरूपी कमल का उदय होता है।